56

56

ओ३म्

विवाहपद्धतिः

श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिनिर्मितात्

संस्कारविध्याख्यग्रन्थात्

 पृथक्कृत्य

श्रीमतीप्रबन्धकर्त्रीसभाऽऽज्ञया

अजमेर

वैदिकयन्त्रालयेमुद्रिता

आर्य्यसंवत्सर १९७२९४९००२

:o:

कार्त्तिकशुक्ल

संवत् १९५८

प्रथमवार मूल्य ।)
२००० प्रति डाकव्यय)॥

भूमिका

सोलह संस्कारों को विध्यनुकूल करना आर्य्यों के मुख्य कर्त्तव्यों में से है। हर्ष का विषय है कि आर्य्यों का ध्यान इस ओर भले प्रकार आकर्षित होने लगा है। परन्तु सम्प्रति और संस्कारों की अपेक्षा विवाह संस्कार की संख्या अधिक प्रतीत होती है इसलिये सर्वसाधारण के सुभीतेके लिये विवाह संस्कार की परिक्रिया पृथक् छपवाने का विचार था और कतिपय महाशयों ने इस विषय में लिखा भी था परन्तु कई कारणों से यह काम रुका पड़ा रहा। अब जालौन के तहसीलदार श्रीयुत् बा० दयारामजी ने प्रेरणा की कि जो इस संस्कार को पृथक् कर छापदें तो वे अपने चिरंजीव पुत्र के विवाह पर मुफ्त बांट ने के लिये १००० प्रति मोल लेवेंगे अतएव इस यन्त्रालय की प्रबन्धकर्त्री सभा की आज्ञानुसार इस संस्कार की विधि को "संस्कारविधि" से पृथक् छाप विवाहपद्धति ऐसा नाम रक्खा है —इस के छापने का श्रेय उपरोक्त महाशयजी को ही है जो इस के लिये धन्यवादार्ह हैं संस्कार का क्रम "संस्कारविधि" से ज्यों का त्यों लिया गया है। सामान्यप्रकरणादि आवश्यक विषय भी साथ लगा दिये हैं और इस संस्कार में भिन्न २ स्थानों में भिन्न २ कार्य्य करने पड़ते थे उन को संस्कार के क्रम से कर दिया है कि पृष्ठ उलटने आदि का परिश्रम न हो और संस्कार के सँस्कर्त्ताओं को भी सुलभता पड़े।

अजमेर नगर
ता० २० नवम्बर १९०१

केशवदेव वर्मा
प्रबन्धकर्त्ता
वैदिक यन्त्रालय

ओ३म्

अथ विवाहपद्धतिः ॥

ओं सहनाववतु । सह नौ भुनक्तु । सह वीर्यं करवावहै । तेजस्विनावधीतमस्तु । मा विद्विषावहै । ओं शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥ तैत्तिरीय आरण्यके । अष्टमप्रपाठके । प्रथमानुवाके ॥

विवाह उस को कहते हैं कि जो पूर्ण ब्रह्मचर्य व्रत विद्या बल को प्राप्त तथा सब प्रकार से शुभ गुण कर्म स्वभावों में तुल्य परस्पर प्रीतियुक्त हो के निम्न लिखित प्रमाणे सन्तानोत्पत्ति और अपने २ वर्णाश्रम के अनुकूल उत्तम कर्म करने के लिये स्त्री और पुरुष का सम्बन्ध होता है । इस में प्रमाण:—

उदगयन आपूर्य्यमाणपक्षे पुण्ये नक्षत्रे* चौलकर्मोपनयन गोदानविवाहाः ॥ १ ॥ सार्वकालमेके विवाहम् ॥ २ ॥

यह आश्वलायन गृह्यसूत्र, और—

आवसथ्याधानं दारकाले ॥ ३ ॥

इत्यादि पारस्कर, और—

पुण्ये नक्षत्रे दारान् कुर्वीत ॥ ४ ॥ लक्षणप्रशस्तान् कुशलेन ॥ ५ ॥

इत्यादि गोभिलीय गृह्यसूत्र और इसी प्रकार शौनक गृह्यसूत्र में भी है ॥

अर्थः—उत्तरायण शुक्ल पक्ष अच्छे दिन अर्थात् जिस दिन प्रसन्नता हो उस दिन विवाह करना चाहिये ॥ १ ॥ और कितने ही आचार्यों का ऐसा मत है कि सब काल में विवाह करना चाहिये ॥ २ ॥ जिस अग्नि का स्थापन विवाह में होता है उस का आवसथ्य नाम है ॥ ३ ॥ प्रसन्नता के दिन स्त्री का पाणिग्रहण जो कि स्त्री सर्वथा शुभ गुणादि से उत्तम हो करना चाहिये ॥ ४ ॥

वधू और वर की आयु, कुल, वास्तव स्थान, शरीर और स्वभाव की परीक्षा अवश्य

---

* यह नक्षत्रादि का विचार कल्पना युक्त है इस से प्रमाण नहीं ।

करें अर्थात् दोनों सज्ञान और विवाह की इच्छा करने वाले हों स्त्री की आयु से वर की आयु न्यून से न्यून डेढ़ी और अधिक से अधिक दूनी होवे परस्पर कुल की परीक्षा भी करनी चाहिये। इस में प्रमाण—

वेदानधीत्य वेदौ वा वेदं वापि यथाक्रमम्।
अविप्लुतब्रह्मचर्यो गृहस्थाश्रममाविशेत् ॥ १ ॥
गुरुणानुमतः स्नात्वा समावृत्तो यथाविधि।
उद्वहेत द्विजो भार्यां सवर्णां लक्षणान्विताम् ॥ २ ॥
असपिण्डा च या मातुरसगोत्रा च या पितुः।
सा प्रशस्ता द्विजातीनां दारकर्मणि मैथुने ॥ ३ ॥
महान्त्यपि समृद्धानि गोजाविधनधान्यतः।
स्त्रीसम्बन्धे दशैतानि कुलानि परिवर्जयेत् ॥ ४ ॥
हीनक्रियं निष्पुरुषं निश्छन्दो रोमशार्शसम्।
क्षय्यामयाव्यपस्मारिश्वित्रिकुष्ठिकुलानि च ॥ ५ ॥
नोद्वहेत् कपिलां कन्यां नाधिकाङ्गीं न रोगिणीम्।
नालोमिकां नातिलोमां न वाचाटां न पिङ्गलाम् ॥ ६ ॥
नर्क्षवृक्षनदीनाम्नीं नान्त्यपर्वतनामिकाम्।
न पक्ष्यहिप्रेष्यनाम्नीं न च भीषणनामिकाम् ॥ ७ ॥
अव्यङ्गाङ्गीं सौम्यनाम्नीं हंसवारणगामिनीम्।
तनुलोमकेशदशनां मृद्वङ्गीमुद्वहेत् स्त्रियम् ॥ ८ ॥
ब्राह्मो दैवस्तथैवार्षः प्राजापत्यस्तथासुरः।
गान्धर्वो राक्षसश्चैव पैशाचश्चाष्टमोऽधमः ॥ ९ ॥
आच्छाद्य चार्चयित्वा च श्रुतिशीलवते स्वयम्।
आहूय दानं कन्याया ब्राह्मो धर्मः प्रकीर्त्तितः ॥ १० ॥
यज्ञे तु वितते सम्यगृत्विजे कर्म कुर्वते।
अलङ्कृत्य सुतादानं दैवं धर्मं प्रचक्षते ॥ ११ ॥
एकं गोमिथुनं द्वे वा वरादादाय धर्मतः।
कन्याप्रदानं विधिवदार्षो धर्मः स उच्यते ॥ १२ ॥
सह नौ चरतां धर्ममिति वाचानुभाष्य च।
कन्याप्रदानमभ्यर्च्य प्राजापत्यो विधिः स्मृतः ॥ १३ ॥

ज्ञातिभ्यो द्रविणं दत्वा कन्यायै चैव शक्तितः ।
कन्याप्रदानं विधिवदासुरो धर्म उच्यते ॥ १४ ॥
इच्छयाऽन्योन्यसंयोगः कन्यायाश्च वरस्य च ।
गान्धर्वः स तु विज्ञेयो मैथुन्यः कामसम्भवः ॥ १५ ॥
हत्वा छित्त्वा च भित्वा च क्रोशन्तीं रुदतीं गृहात् ।
प्रसह्य कन्याहरणं राक्षसो विधिरुच्यते ॥ १६ ॥
सुप्तां मत्तां प्रमत्तां वा रहो यत्रोपगच्छति ।
स पापिष्ठो विवाहानां पैशाचश्चाष्टमोऽधमः ॥ १७ ॥
ब्राह्मादिषु विवाहेषु चतुर्ष्वेवानुपूर्वशः ।
ब्रह्मवर्चस्विनः पुत्रा जायन्ते शिष्टसंमताः ॥ १८ ॥
रूपसत्त्वगुणोपेता धनवन्तो यशस्विनः ।
पर्याप्तभोगा धर्मिष्ठा जीवन्ति च शतं समाः ॥ १९ ॥
इतरेषु तु शिष्टेषु नृशंसानृतवादिनः ।
जायन्ते दुर्विवाहेषु ब्रह्मधर्मद्विषः सुताः ॥ २० ॥
अनिन्दितैः स्त्रीविवाहैरनिन्द्या भवति प्रजा ।
निन्दितैर्निन्दिता नृणां तस्मान्निन्द्यान् विवर्जयेत् ॥ २१ ॥

अर्थः–ब्रह्मचर्य से ४ चार ३ तीन २ दो अथवा १ एक वेद को यथावत् पढ़, अखण्डित ब्रह्मचर्य का पालन करके गृहाश्रम को धारण करे ॥ १ ॥ यथावत् उत्तम रीति से ब्रह्मचर्य और विद्या को ग्रहण कर गुरु की आज्ञा से स्नान करके ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य अपने वर्ण की उत्तम लक्षणयुक्त स्त्री से विवाह करे ॥ २ ॥ जो स्त्री माता की छः पीढ़ी और पिता के गोत्र की न हो वही द्विजों के लिये विवाह करने में उत्तम है ॥ ३ ॥ विवाह में नीचे लिखे हुए दश कुल चाहें वे गाय आदि पशु धन और धान्य से कितने ही बड़े हों उन कुलों की कन्या के साथ विवाह न करे ॥ ४ ॥ वे दश कुल ये हैं १ एक जिस कुल में उत्तम क्रिया न हो । २ दूसरा—जिस कुल मे कोई भी उत्तम पुरुष न हो । ३ तीसरा—जिस कुल में कोई विद्वान् न हो । ४ चौथा—जिस कुल में शरीर के ऊपर बड़े २ लोमहों । ५ पांचवा–जिस कुल में बवासीर हो। ६ छठा-जिस कुल में क्षयी (राजयक्ष्मा) रोग हो । ७ सातवां—जिस कुल में अग्निमन्दता से आमाशय रोग हो । ८ आठवां -जिस कुल में मृगी रोग हो। ९ नववां-जि-

स कुल में श्वेत कुष्ठ हो। और १० दशवां-जिस कुल में गलित कुष्ठ आदि रोग हों। उन कुलों की कन्या अथवा उन कुलों के पुरुषों से विवाह कभीं न करे ॥ ५ ॥ पीले वर्ण वाली, अधिक अङ्ग वाली जैसी छंगुली आदि, रोगवती, जिस के शरीर पर कुछ भी लोम न हों और जिस के शरीर पर बड़े २ लोम हों, व्यर्थ अधिक बोलने हारी और जिस के पीले बिल्ली के सदृश नेत्र हों ॥ ६ ॥ तथा जिस कन्या का (ऋक्ष) नक्षत्र पर नाम अर्थात् रेवती रोहिणी इत्यादि (नदी) जिस का गङ्गा, यमुना इत्यादि (पर्वत) जिस का विन्ध्याचला इत्यादि (पक्षी) पक्षी पर अर्थात् कोकिला, हंसा इत्यादि (अहि) अर्थात् उरगा भोगिनी इत्यादि (प्रेष्य) दासी इत्यादि और जिस कन्या का (भीषण) कालिका, चण्डिका इत्यादि नाम हो उस से विवाह न करे ॥ ७ ॥ किन्तु जिस के सुन्दर अङ्ग उत्तम नाम हंस और हस्तिनी के सदृश चाल वाली जिस के सूक्ष्म लोम सूक्ष्म केश और सूक्ष्म दांत हों जिस के सब अङ्ग कोमल हों उस स्त्री से विवाह करे ॥८॥ ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर, गान्धर्व, राक्षस और पैशाच ये विवाह आठ प्रकार के होते हैं ॥ ९ ॥ ब्राह्म, कन्या के योग्य सुशील विद्वान् पुरुष का सत्कार कर के कन्या को वस्त्रादि से अलंकृत करके उत्तम पुरुष को बुला अर्थात् जिस को कन्या ने प्रसन्न भी किया हो उस को कन्या देना वह ब्राह्म विवाह कहाता है ॥१०॥ विस्तृत यज्ञ में बड़े २ विद्वानों का वर्ण कर उस में कर्म करने वाले विद्वान् को वस्त्र आभूषण आदि से कन्या को सुशोभित कर के देना वह दैव विवाह ॥ ११ ॥ ३ तीसरा, १ एक गाय बैल का जोड़ा अथवा २ दो जोड़े * वर से लेके धर्म पूर्वक कन्यादान करना वह आर्ष विवाह ॥ १२ ॥ और ४ चौथा, कन्या और वर को यज्ञशाला में विधि करके सब के सामने तुम दोनों मिल गृहाश्रम के कर्म्मों को यथावत् करो ऐसा कह कर दोनों की प्रसन्नता पूर्वक पाणिग्रहण होना वह प्राजापत्य विवाह कहाता है। ये ४ चार विवाह उत्तम हैं ॥ १३ ॥ और ५ पांचवां वर की जाति वालों और कन्या को यथाशक्ति धन देके होम आदि विधि कर कन्या देना आसुर विवाह कहाता है ॥ १४ ॥ ६ छठा वर और कन्या की इच्छा से दोनों का संयोग होना और अपने मन में मान लेना कि हम दोनों स्त्री पुरुष हैं यह काम से हुआ गान्धर्व विवाह कहाता है ॥ १५ ॥ और ७ सातवां हनन छेदन अर्थात् कन्या के रोकने वालों का विदारण कर

*यह बात मिथ्या है क्योंकि आगे मनुस्मृति में निषेध किया है और युक्ति विरुद्ध भी है इस लिये कुछ भी न ले दे कर दोनों की प्रसन्नता से पाणिग्रहण होना आर्ष विवाह है।

क्रोशती रोती कंपती और भयभीत हुई कन्या को बलात्कार हरण करके विवाह करना राक्षस विवाह ॥ १६ ॥ और जो सोती पागल हुई वा नशा पी कर उन्मत्त हुई कन्या को एकान्त पाकर दूषित कर देना, यह सब विवाहों म नीच से नीच महानीच दुष्ट अतिदुष्ट पैशाच विवाह है ॥ १७ ॥ ब्राह्म, दैव, आर्ष, और प्रजापत्य इन ४ चार विवाहा में पाणिग्रहण किये हुए स्त्री पुरुषों से जो सन्तान उत्पन्न होते हैं वे वेदादिविद्या से तेजस्वी आप्त पुरुषों के संमत अत्युत्तम होते हैं ॥ १८ ॥ वे पुत्र वा कन्या सुन्दर रूप बल पराक्रम शुद्ध बुद्धचादि उत्तम गुण युक्त बहुधनयुक्त पुण्यकीर्तिमान् और पूर्ण भोग के भोक्ता आतेशय धर्मात्मा हो कर १०० सौ वर्ष तक जीते हैं ॥ १९ ॥ इन चार विवाहों से जो बाकी रहे ४ चार आसुर, गांधर्व, राक्षस और पैशाच. इन ४ चार दुष्ट विवाहों से उत्पन्न हुए सन्तान निन्दित कर्म कर्ता मिथ्यावादी वेद धर्म के द्वेषी बड़े नीच स्वभाव वाले होते हैं ॥ २०॥ इस लिये मनुष्यों को योग्य है कि जिन निन्दित विवाहों से नीच प्रजा होती है उन का त्याग और जिन उत्तम विवाहों से उत्तम प्रजा होती है उन का वर्त्ताव किया करैं ॥ २१ ॥

उत्कृष्टायाभिरूपाय वराय सदृशाय च ।
अप्राप्तामपि तां तस्मै कन्यां दद्याद्विचक्षणः ॥ १ ॥
काममामरणात्तिष्ठेद् गृहे कन्यर्त्तुमत्यपि ।
न चैवैनां प्रयच्छेत्तु गुणहीनाय कर्हिचित् ॥ २ ॥
त्रीणि वर्षाण्युदीक्षेत कुमार्यृतुमती सती ।
ऊर्ध्वन्तु कालादेतस्माद्विन्देत सदृशं पतिम् ॥ ३ ॥

यदि माता पिता कन्या का विवाह करना चाहें तो अतिउत्कृष्ट शुभ गुण कर्म स्वभाव वाला कन्या के सदृश रूपलावण्यादि गुणयुक्त वर ही को चाहें वह कन्या माता की छः पीढ़ी के भीतर भी हो तथापि उसी को कन्या देना अन्य को कभी न देना कि जिस स दोनों अतिप्रसन्न हो कर गृहाश्रम की उन्नति और उत्तम सन्तानों को उत्पत्ति करें ॥ १ ॥ चाहे मरण पर्यन्त कन्या पिता के घर में बिना विवाह के बैठी भी रहे परन्तु गुणहीन असदृश दुष्ट पुरुष के साथ कन्या का विवाह कभी न करे और वर कन्या भी अपने आप स्वसदृश के साथ ही विवाह करें ॥ २ ॥ जब कन्या विवाह करने की इच्छा करे तब रजस्वला होने के दिन से ३ तीन वर्ष को छोड़ के ४ चौथे वर्ष में विवाह करे ॥३॥

(प्रश्न) " अष्टवर्षा भवेद् गौरी नववर्षा च रोहिणी" इत्यादि श्लोकों की क्या

गति होगी (उत्तर) इन श्लोकों और इन के मानने बालों की दुर्गति अर्थात जो इन श्लोकों की रीति से बाल्यावस्था में अपने सन्तानों का विवाह कर करा उन को नष्ट भ्रष्ट रोगी अल्पायु करते हैं वे अपने कुल का जानों सत्यानाश कर रहे हैं इस लिये यदि शीघ्र विवाह करें तो वेदारम्भ में लिखे हुए १६ सोलह वर्ष से न्यून कन्या और २५ पच्चीस वर्ष से न्यून पुरुष का विवाह कभी न करें करावें। इस के आगे जितना अधिक ब्रह्मचर्य रक्खें गे उतना ही उन को आनन्द अधिक होगा॥

(प्रश्न) विवाह निकट वासियों से करना चाहिये अथवा दूरवासियों से (उत्तर)

दुहिता दुर्हिता दूरे हिता भवतीति॥

यह निरुक्त का प्रमाण है कि जितना दूरदेश में विवाह होगा उतना हि उन को अधिक लाभ होगा (प्रश्न) अपने गोत्र वा भाई बहिनों का परस्पर विवाह क्यों नहीं होता (उत्तर) एक दोष यह है कि इन के विवाह होने में प्रीति कभी नहीं होती क्योंकि जितनी प्रीति परोक्ष पदार्थ में होती है उतनी प्रत्यक्ष में नहीं और बाल्यावस्था के गुण दोष भी विदित रहते हैं तथा भयादि भी अधिक नहीं रहते दूसरा जब तक दूरस्थ एक दूसरे कुल के साथ सम्बन्ध नहीं होता तब तक शरीर आदि की पुष्टि पूर्ण नहीं होती तीसरा दूर सम्बन्ध होने से परस्पर प्रीति उन्नति ऐश्वर्य बढ़ता है निकट से नहीं, युवावस्था ही में विवाह का प्रमाण—

तमस्मेरा युवतयो युवानं मर्मृज्यमानाः परि यन्त्यापः। स शुक्रेभिः शिक्वभी रेवदस्मे दीदायानिध्मो घृतनिर्णिगप्सु॥ १॥ अस्मै तिस्रो अव्यथ्याय नारीर्देवाय देवीर्दिधिषन्त्यन्नम्। कृता इवोप हि प्रसर्स्रे अप्सु स पीयूषं धयति पूर्वसूनाम्॥ २॥ अश्वस्यात्र जनिमास्य च स्वर्द्रुहो रिषः सम्पृचः पाहि सूरीन्। आमासु पूर्षु परो अप्रमृष्यं नारातयो वि नशन्नानृतानि॥ ३॥ ऋ॰ मं॰ २ सू॰ ३५ मं॰ ४—६। वधूरियं पतिमिच्छन्त्येति य ईं वहाते महिषीमिषिराम्। आस्य श्रवस्याद्रथ आ च घोषत्पुरू सहस्रा परि वर्त्तयाते॥ ४॥ ऋ॰ मं॰ ५। सू॰ ३७। मं॰ ३॥

उप व एषे वन्द्येभिः शूषैः प्र यह्वी दिवश्चितयद्भिरर्कैः। उषासानक्ता विदुषीव विश्वमा हा वहतो मर्त्याय यज्ञम्॥ ५॥ ऋ॰ मं॰ ५। सू॰ ४१। मं॰ ७॥

अर्थः—जो (मर्मृज्यमानाः) उत्तम ब्रह्मचर्य व्रत और सद्विद्याओं से अत्यन्त (युवतयः) २० वीसवें वर्ष से २४ चोवीसवें वर्ष वाली हैं वे कन्या लोग जैसे (आपः) जल वा नदी समुद्र को प्राप्त होती हैं वैसे (अस्मेराः) हम को प्राप्त होने वाली अपने २ प्रसन्न अपने से डेढ़े वा दूने आयु वाले (तम्) उस ब्रह्मचर्य और विद्या से परिपूर्ण शुभलक्षणयुक्त (युवानम्) जवान पति को (परियन्ति) अच्छे प्रकार प्राप्त होती हैं (सः) वह ब्रह्मचारी (शुक्रेभिः) शुद्ध गुण और (शिक्वभिः) वीर्यादि से युक्त हो के (अस्मे) हमारे मध्य में (रेवत्) अत्यन्त श्रीयुक्त कर्म को और (दीदाय) अपने तुल्य युवति स्त्री को प्राप्त होवे जैसे (अप्सु) अन्तरिक्ष वा समुद्र में (घृतनिर्णिक्) जल को शोधन करने हारा (अनिध्मः) आप प्रकाशित विद्युत अग्नि है इसी प्रकार स्त्री और पुरुष के हृदय में प्रेम बाहर अप्रकाशमान भीतर सुप्रकाशित रह कर उत्तम सन्तान और अत्यन्त आनन्द को गृहाश्रम में दोनों स्त्री पुरुष प्राप्त होवें ॥ १ ॥ हे स्त्रीपुरुषो जैसे (तिस्रः) उत्तम मध्यम तथा निकृष्ट स्वभावयुक्त (देवीः, नारीः) विद्वान् नरों की विदुषी स्त्रियां (अस्मै) इस (अव्यथ्याय) पीड़ा से रहित (देवाय) काम के लिये (अन्नम्) अन्नादि उत्तम पदार्थों को (दिधिषन्ति) धारण करती हैं (कृता इव) की हुई शिक्षायुक्त के समान (अप्सु) प्राणवत् प्रीति आदि व्यवहारों में प्रवृत्त होने के लिये स्त्री से पुरुष और पुरुष से स्त्री (उप, प्रसर्स्रे) सम्बन्ध को प्राप्त होती है (स, हि) वही पुरुष और स्त्री आनन्द को प्राप्त होती है जैसे जलों में (पीयूषम्) अमृतरूप रस को (पूर्वसूनाम्) प्रथम प्रसूत हुई स्त्रियों का बालक (धयति) दुग्ध पी के बढ़ता है वैसे इन ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारिणी स्त्री के सन्तान यथावत् बढ़ते हैं ॥ २ ॥ जैसे राजादि सब लोग (पूर्षु) अपने नगरों और (आमासु) अपने घर में उत्पन्न हुए पुत्र और कन्या रूप प्रजाओं में उत्तम शिक्षाओं को (परः) उत्तम विद्वान् (अप्रमृष्यम्) शत्रुओं को सहने के अयोग्य ब्रह्मचर्य से प्राप्त हुए शरीरात्मबलयुक्त देह को (अरातयः) शत्रु लोग (न) नहीं (विनशन्) विनाश कर सकते और (अनृतानि) मिथ्याभाषणादि दुष्ट दुर्व्यसनों को प्राप्त (न) नहीं होते वैसे उत्तम स्त्री पुरुषों को (द्रुहः) द्रोह आदि दुर्गुण और (रिषः) हिंसा आदि पाप (न सम्पृचः) सम्बन्ध नहीं करते किन्तु जो युवावस्था में विवाह कर प्रसन्नता पूर्वक विधि से सन्तानोत्पत्ति करते हैं इन के (अस्य) इस (अश्वस्य) महान् गृहाश्रम के मध्य में उत्तम बालकों का (जनिम) जन्म होता है इस लिये हे स्त्रि वा पुरुष तू (सूरीन्) विद्वानों की (पाहि) रक्षा कर (च) और ऐसे गृहस्थों को (अत्र) इस गृहाश्रम में

सदैव (स्वः) सुख बढ़ाता रहता है ॥ ३ ॥ हे मनुष्यों (यः) जो पूर्वोक्त लक्षण युक्त पूर्ण जवान (ईम्) सब प्रकार की परीक्षा करके (महिषीम्) उत्तम कुल में उत्पन्न हुई विद्या शुभ गुण रूप सुशीलतादि युक्त (इषिराम्) वर की इच्छा करने हारी हृदय को प्रिय स्त्री को (एति) प्राप्त होता है और जो (पतिम्) विवाह से अपने स्वामी की (इच्छन्ती) इच्छा करती हुई (इयम्) यह (वधूः) स्त्री अपने सदृश हृदय को प्रिय पति को (एति) प्राप्त होती है वह पुरुष वा स्त्री (अस्य) इस गृहाश्रम के मध्य (आश्रवस्यात्) अत्यन्त विद्या धन धान्य युक्त सब ओर से होवे और वे दोनों (रथः) रथ के समान (आघोषात्) परस्पर प्रिय वचन बोलें (च) और सब गृहाश्रम के भार को (वहाते) उठा सकते हैं तथा वे दोनों (पुरु) बहुत (सहस्रा) असङ्ख्य उत्तम कार्यों को (परिवर्तयाते) सब ओर सिद्ध करते हैं ॥ ४ ॥ हे मनुष्यो यदि तुम पूर्ण ब्रह्मचर्य से सुशिक्षित विद्या युक्त अपने सन्तानों को करा के स्वयंवर विवाह कराओ तो वे (वन्येभिः) कामना के योग्य (चितयद्भिः) सब सत्य विद्याओं को जानने हारे (अर्कैः) सत्कार के योग्य (शूषैः) शरीरात्मबलों से युक्त हो के (वः) तुम्हारे लिये (एषे) सब सुख प्राप्त कराने को समर्थ होवें और वे (उषासानक्ता) जैसे दिन और रात तथा जैसे (विदुषीव) विदुषी स्त्री और विद्वान् पुरुष (विश्वम्) गृहाश्रम के संपूर्ण व्यवहार को (आवहतः) सब ओर से प्राप्त होते हैं (ह) वैसे ही इस (यज्ञम) संगत रूप गृहाश्रम के व्यवहार को वे स्त्री पुरुष पूर्ण कर सकते हैं और (मर्त्याय) मनुष्यों के लिये यही पूर्वोक्त विवाह पूर्ण सुखदायक है और (यह्वी) बड़े ही शुभगुणकर्मस्वभाव वाले स्त्री पुरुष दोनों (दिवः) कामनाओं को (उप, प्र, वहतः) अच्छे प्रकार प्राप्त हो सकते हैं अन्य नहीं ॥ ५ ॥

जैसे ब्रह्मचर्य में कन्या का ब्रह्मचर्य वेदोक्त है वैसे ही सब पुरुषों को ब्रह्मचर्य से विद्या पढ़ पूर्ण जवान हो परस्पर परीक्षा करके जिस से जिस की विवाह करने में पूर्ण प्रीति हो उसी से उसका विवाह होना अत्युत्तम है। जो कोई युवावस्था में विवाह न करा के बाल्यावस्था में अनिच्छित अयोग्य वर कन्या का विवाह करावेंगे वे वेदोक्त ईश्वराज्ञा के विरोधी हो कर महा दुःखसागर में क्यों कर न डूबेंगे और जो पूर्वोक्त विधि से विवाह करते कराते हैं वे ईश्वराज्ञा के अनुकूल होने से पूर्ण सुख को प्राप्त होते हैं (प्रश्न) विवाह अपने २ वर्ण में होना चाहिये वा अन्यवर्ण में भी (उत्तर)

अपने २ वर्ण में। परन्तु वर्ण व्यवस्था गुण कर्मों के अनुसार होनी चाहिये जन्ममात्र से नहीं जो पूर्ण विद्वान् धर्मात्मा परोपकारी जितेन्द्रिय मिथ्याभाषणादि दोष रहित विद्या और धर्म प्रचार में तत्पर रहे इत्यादि उत्तम गुण जिस में हों वह ब्राह्मण ब्राह्मणी। विद्या बल शौर्य न्यायकारित्वादि गुण जिस में हों वह क्षत्रिय क्षत्रिया। और विद्वान् हो के कृषि पशुपालन व्यवहार देशभाषाओं में चतुरादि गुण जिस में हों वह वैश्य वैश्या। और जो विद्याहीन मूर्ख हो वह शूद्र शूद्रा कहावे। इसी क्रम से विवाह होना चाहिये अर्थात् ब्राह्मण का ब्राह्मणी, क्षत्रिय का क्षत्रिया, वैश्य का वैश्या और शूद्र का शूद्रा के साथ ही विवाह होने में आनन्द होता है अन्यथा नहीं॥ इस वर्णव्यवस्था में प्रमाणः—

धर्मचर्यया जघन्यो वर्णः पूर्वं पूर्वं वर्णमापद्यते जातिपरिवृत्तौ॥ १ ॥
अधर्मचर्यया पूर्वो वर्णो जघन्यं जघन्यं वर्णमापद्यते जातिपरिवृत्तौ॥ २ ॥
आपस्तम्बे॥ शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम्।
क्षत्रियाज्जातमेवन्तु विद्याद्वैश्यात्तथैव च॥ ३ ॥ मनुस्मृतौ॥

अर्थः-धर्माचरण से नीच वर्ण उत्तम २ वर्ण को प्राप्त होता है और उस वर्ण में जो २ कर्तव्य अधिकार रूप कर्म हैं वे सब गुण कर्म उस पुरुष और स्त्री को प्राप्त होवें॥१॥ वैसे ही अधर्माचरण से उत्तम २ वर्ण नीचे २ के वर्ण को प्राप्त होवें और वे ही उस २ वर्ण के अधिकार और कर्मों के कर्त्ता होवें॥२॥ उत्तम गुण कर्म स्वभाव से जो शूद्र है वह वैश्य क्षत्रिय और ब्राह्मण, और वैश्य क्षत्रिय और ब्राह्मण, तथा क्षत्रिय ब्राह्मण, वर्ण के अधिकार और कर्मों को प्राप्त होता है वैसे ही नीच कर्म और गुणों से जो ब्राह्मण है वह क्षत्रिय वैश्य शूद्र, और क्षत्रिय वैश्य शूद्र तथा वैश्य शूद्र वर्ण के अधिकार और कर्मों को प्राप्त होता है॥ ३॥

इसी प्रकार वर्णव्यवस्था होने से पक्षपात न हो कर सब वर्ण उत्तम बने रहते और उत्तम बनने में प्रयत्न करते और उत्तम वर्ण के भय से कि मैं नीच वर्ण न हो जाऊं इसलिये बुरे कर्म छोड़ उत्तम कर्मों ही को किया करते हैं इस से संसार की वड़ी उन्नति है। आर्यावर्त्त देश में जब तक ऐसी वर्णव्यवस्था पूर्वोक्त ब्रह्मचर्य विद्या ग्रहण उत्तमता से स्वयंवर विवाह होता था तभी देश की उन्नति थी, अब भी ऐसा ही होना चाहिये जिस से आर्यावर्त्त देश अपनी पूर्वावस्था को प्राप्त होकर आनन्दित होवे॥

अब बधू वर एक दूसरे के गुण कर्म और स्वभाव की परीक्षा इस प्रकार करेंः- दोनों का तुल्य शील, समान बुद्धि, समान आचार, समान रूपादि गुण, अहिंसकता,

सत्य मधुरभाषण, कृतज्ञता, दयालुता, अहंकार, मत्सर, ईर्ष्या, काम, क्रोध, निर्लोभता, देश का सुधार, विद्याग्रहण, सत्योपदेश करने में निर्भयता, उत्साह, कपट, द्यूत, चोरी, मद्य, मांसाहारादि दोषों का त्याग गृह कामों में अतिचतुरता हो जब २ प्रातः सायं वा परदेश से आ कर मिलें तब २ नमस्ते इस वाक्य से परस्पर नमस्कार कर स्त्री पति के चरणस्पर्श पादप्रक्षालन आसन दान करे तथा दोनों परस्पर प्रेम बढ़ाने हारे वचनादि व्यवहारों से वर्त कर आनन्द भोगें वर के शरीर से स्त्री का शरीर पतला और पुरुष के स्कन्धे के तुल्य स्त्री का शिर होना चाहिये तत्पश्चात् भीतर की परीक्षा स्त्री पुरुष वचनादि व्यवहारों से करें ॥

ओं ऋतमग्ने प्रथमं जज्ञ ऋते सत्यं प्रतिष्ठितम् । यदियं कुमार्य्यभिजाता तादियमिह प्रतिपद्यताम् । यत्सत्यं तद्दृश्यताम् ।

अर्थः—जब विवाह करने का समय निश्चय हो चुके तब कन्या चतुर पुरुषों से वर की और चतुर स्त्रियों से कन्या की परोक्ष में परीक्षा करावे पश्चात् उत्तम विद्वान् स्त्री पुरुषों की सभा करके दोनों परस्पर संवाद करें कि हे स्त्री वा हे पुरुष इस जगत् के पूर्व ऋत यथार्थ स्वरूप महत्तत्व उत्पन्न हुआ था और उस महत्तत्व में सत्य त्रिगुणात्मक नाशरहित प्रकृति प्रतिष्ठित है जैसे पुरुष और प्रकृति के योग से सब विश्व उत्पन्न हुआ है वैसे मैं कुमारी और मैं कुमार पुरुष इस समय दोनों में विवाह करने की सत्य प्रतिज्ञा करती वा करता हूं उस को यह कन्या और मैं वर प्राप्त होवें और अपनी प्रतिज्ञा को सत्य करने के लिये दृढ़ोत्साही रहें ॥

विवाह का कर्म आरम्भ करने के पूर्व निम्नलिखित बातों का प्रबन्ध कर रखना चाहिये ॥

यज्ञदेश—यज्ञ का देश पवित्र अर्थात् जहां स्थल, वायु शुद्ध हो किसी प्रकार का उपद्रव न हो ॥

यज्ञशाला—इसी को यज्ञमण्डप भी कहते हैं यह अधिक से अधिक १६ सोलह हाथ सम चौरस चौकोण और न्यून से न्यून ८ आठ हाथ की हो यदि भूमि अशुद्ध हो तो यज्ञशाला की पृथिवी और जितनी गहरी वेदी बनानी हो उतनी पृथिवी दो २ हाथ खोद अशुद्ध निकाल कर उस में शुद्ध मट्टी भरें । यदि १६ सोलह हाथ की सम चौरस हो तो चारों ओर २० बीस खम्भे और जो ८ आथ हाथ की होतो १२ बारह खम्भे लगा कर उन पर छाया करें वह छाया की छत्त वेदी की मेखला से १० दश

हाथ ऊंची अवश्य होवे और यज्ञशाला के चारों दिशा में ४ द्वार रक्खें और यज्ञशाला के चारों ओर ध्वजा पताका पल्लव आदि बांधें नित्य मार्जन तथा गोमय से लेपन करें और कुंकुम हलदी मैदा की रेखाओं से सुभूषित किया करें। मनुष्यों का योग्य है कि सब मङ्गलकार्यों में अपने और पराये कल्याण के लिये यज्ञद्वारा ईश्वरोपासना करें इसी लिये निम्न लिखित सुगन्धित आदि द्रव्यों की आहुति यज्ञकुण्ड में देवें॥

यज्ञकुण्ड का परिमाण

जो लक्ष आहुति करनी हो तो चार २ हाथ का चारों ओर सम चौरस चौकोण कुण्ड ऊपर और उतना ही गहिरा और चतुर्थांश नीचे अर्थात् तले में १ एक हाथ चौकोण लम्बा चौड़ा रहै उसी प्रकार जितनी आहुति करनी हों उतना ही गहिरा चौड़ा कुण्ड बनाना परन्तु अधिक आहुतियों में दो २ हाथ अर्थात् दो लक्ष आहुतियों में छः हस्त परिमाण का चौड़ा और सम चौरस कुण्ड बनाना और जो पचास हजार आहुति देनी हों तो एक हाथ घटावे अर्थात् तीन हाथ गहिरा चौड़ा सम चौरस और पौन हाथ नीचे तथा पच्चीस हजार आहुति देनी हों तो दो हाथ चौड़ा गहिरा सम चौरस और आध हाथ नीचे दश हजार आहुति तक इतना ही अर्थात् दो हाथ चौड़ा गहिरा सम चौरस और आध हाथ नीचे रखना, पांच हजार आहुति तक डेढ़ हाथ चौड़ा गहिरा सम चौरस और साढ़े आठ अंगुल नीचे रहे यह कुण्ड का परिमाण विशेष घृताहुति का है यदि इस में २५०० ढाई हजार आहुति मोहनभोग खीर और २५०० ढाई हजार घृत की देवे तो दो ही हाथ का चौड़ा गहिरा सम चौरस और आध हाथ नीचे कुण्ड रक्खे, चाहे घृत की हजार आहुति देनी हों तथापि सवाहाथ से न्यून चौड़ा गहिरा सम चौरस और चतुर्थांश नीचे न बनावे और इन कुण्डों में १५ पंद्रह अंगुल की मेखला अर्थात् पांच २ अंगुल की ऊंची ३ तीन बनावें। और ये तीन मेखला यज्ञशाला की भूमि के तले से ऊपर करनी प्रथम पांच अंगुल ऊंची और पांच अंगुल चौड़ी इसी प्रकार दूसरी और तीसरी मेखला बनावें॥

यज्ञसमिधा

पलाश, शमी, पीपल, बड़, गूलर, आंब, बिल्व आदि की समिधा वेदी के प्रमाणे छोटी बड़ी कटवा लेवें। परन्तु ये समिधा, कीड़ा लगीं, मलिन देशोत्पन्न और अपवित्र पदार्थ आदि से दूषित न हों अच्छे प्रकार देख लेवें और चारों ओर बराबर कर बीच में चुनें॥

होम के द्रव्य चारप्रकार ॥

(प्रथम--सुगन्धित) कस्तूरी, केशर, अगर, तगर, श्वेतचन्दन, इलायची, जायफल, जावित्री, आदि (द्वितीय--पुष्टिकारक) घृत, दूध, फल कन्द, अन्न, चावल, गेंहू, उड़द, आदि (तीसरे—मिष्ट) शक्कर, सहत, छुहारे, दाख आदि, (चौथे—रोगनाशक) सोमलता, अर्थात् गिलोय आदि ओषधियां ॥

स्थालीपाक ॥

नीचे लिखे विधि से भात, खिचड़ी, खीर, लड्डू,मोहन भोग, सब उत्तम पदार्थ बनावे इस का प्रमाण ॥

ओ३म् । देवस्त्वा सविता पुनात्वच्छिद्रेण वसोः पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः ॥

इस मंत्र का यह अभिप्राय है कि होम के सब द्रव्य को यथावत् शुद्ध कर लेना अवश्य चाहिये अर्थात् सब को यथावत् शोध छान देख भाल सुधार कर करें इन द्रव्यों को यथायोग्य मिला के पाक करना जैसे कि सेर भर मिश्री के मोहनभोग में रत्ती भर कस्तूरी, मासे भर केशर, दो मासे जायफल, जावित्री, सेर भर मीठा सब डाल कर, मोहनभोग बनाना इसी प्रकार अन्य—मीठा भात, खीर खिचड़ी, मोदक, आदि होम के लिये बनावें । चरु अर्थात् होम के लिये पाक बनाने की विधि (ओं अग्नये त्वा जुष्टं निर्वपामि) अर्थात् जितनी आहुति देनी हों प्रत्येक आहुति के लिये चार २ मूठी चावल आदि ले के (ओं अग्नये त्वा जुष्टं प्रोक्षामि) अर्थात् अच्छे प्रकार जल से धोके पाकस्थाली में डाल अग्नि से पका लेवे जब होम के लिये दूसरे पात्र में लेना हो तभी नीचे लिखी आज्यस्थाली वा शाकल्यस्थाली में निकाल के यथावत् सुरक्षित रखें । और उस पर घृत सेचन करें ॥

यज्ञपात्र

विषेश कर चांदी अथवा काष्ट के पात्र होने चाहिये निम्न लिखित प्रमाणे,

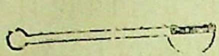
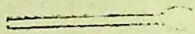
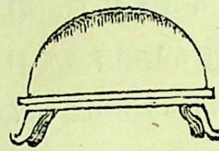
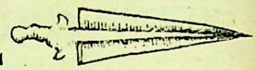
अथपात्रलक्षणान्युच्यन्ते ॥

बाहुमात्र्यः पाणिमात्रपुष्कराः । षडङ्गुलखातास्त्वग्बिलाहंसमुखप्रसेकाः ।

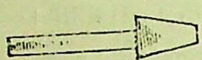
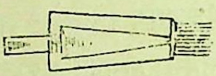
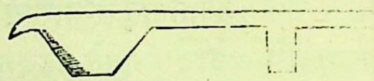
मूलदण्डाश्चतस्रः स्रुचो भवन्ति। तत्र पालाशी जुहूः। आश्वत्थ्युपभृत्। वैकङ्कती ध्रुवा। अग्निहोत्रहवणी च। अरत्निमात्रः खादिरः स्रुवः। अङ्गुष्ठपर्वमात्रपुष्करः। तथाविधो द्वितीयो वैकङ्कतः स्रुवः। वारणं वाहुमात्रं मकराकारमग्निहोत्रहवणीनिधानार्थं कूर्चम्। अरत्निमात्रं खादिरं खड्गाकृति वज्रम्। वारणान्यहोमसंयुक्तानि। तत्रोलूखलं नाभिमात्रम्। मुसलं शिरोमात्रम्। अथवा मुसलोलूखले वार्क्षे सारदारुमये शुभे इच्छाप्रमाणे भवतः। तथा-खादिरं मुसलं कार्यं पालाशः स्यादुलूखलः। यद्वोभौ वारणौ कार्यौ तदभावेऽन्यवृक्षजौ। शूर्पं वैणवमेव वा। ऐशीकं नलमयं वाऽचर्मबद्धम्। प्रादेशमात्री वारणी शम्या। कृष्णाजिनमखण्डम्। दृषदुपले अश्ममये। वारणीं २४ हस्तमात्रीं २२ अरत्निमात्रीं वा खातमध्यां मध्यसंगृहीतामिडापात्रीम्। अरत्निमात्राणि ब्रह्मयजमानहोतृपत्न्यासनानि। मुञ्जमयं त्रिवृतं व्याममात्रं योक्त्रम्। प्रादेशदीर्घे अष्टाङ्गुलायते षडङ्गुलखातमण्डलमध्ये पुरोडाशपात्र्यौ। प्रादेशमात्रं द्व्यङ्गुलपरीणाहन्तीक्ष्णाग्रं श्रितावदानम्। आदर्शाकारे चतुरस्रे वा प्राशित्रहरणे। तयोरेकमीषत्खातमध्यम्। षडङ्गुलकङ्कतिकाकारमुभयतः खातं षडवदात्तम्। द्वादशाङ्गुलमर्द्धचन्द्राकारमष्टाङ्गुलोत्सेधमन्तर्द्धानकटम्। उपवेशोऽरत्निमात्रः। मुञ्जमयी रज्जुः। खादिरान् द्वादशाङ्गुलदीर्घान् चतुरङ्गलमस्तकान् तीक्ष्णाग्रान् शङ्कून्। यजमानपूर्णपात्रं पत्नीपूर्णपात्रं च द्वादशाङ्गुलदीर्घं चतुरङ्गुलविस्तारं चतुरङ्गुलखातम्। तथा प्रणीतापात्रञ्च। आज्यस्थाली द्वादशाङ्गुलविस्तृता प्रादेशोच्चा। तथैव चरुस्थाली। अन्वाहार्यपात्रं पुरुषचतुष्टयाहारपाकपर्याप्तं समिदिध्मार्थं पलाशशाखामयं कौशं बर्हिः। ऋत्विग्वरणार्थं कुण्डलाङ्गुलीयकवासांसि। पत्नीयजमानपरिधानार्थं क्षौमवासश्चतुष्टयम। अग्न्याधेयदक्षिणार्थं चतुर्विंशतिपक्षे एकोनपञ्चाशद् गावः। द्वादशपक्षे पञ्चविंशतिः। षट्पक्षे त्रयोदश। सर्वेषु पक्षेषु आदित्येऽष्टौ धेनवः। वरार्थं चतस्रो गावः॥

समिध पलाश की १८ हस्त ३ इध्म परिधि ३ पलाश की वाहुमात्र सामिधेनी समित् प्रादेशमात्र सामीक्षण लेर ५ शाठी १ दृषदुपल १ दीर्घ अङ्गुल १२ पृ॰ १६ उपल अं॰ ६ नेतु व्यास हाथ ४ त्रिवृत्तृण वा गोवाल का॥

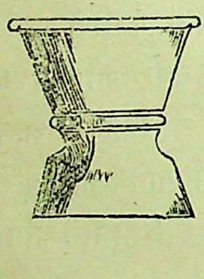
स्रुवः अंगुल २४ शम्याप्रादेश १। अन्तर्धान १ अं०१२। खाँडाअंगुल २४

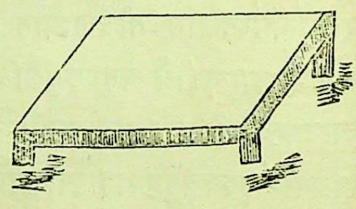





श्रृतावदानप्रादेश मात्र   कूर्च बाहुमात्र १   स्रुच् सर्व ४ बाहुमात्र।

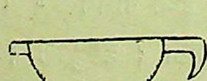
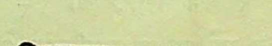




उलूखलनाभिमात्र   मुसल   पाटला ४ लम्बा २४ अं०

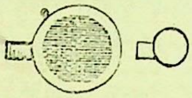
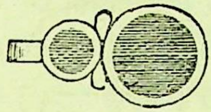
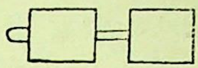
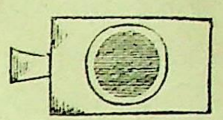




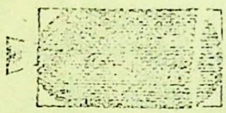
उपवेश १ अं० २४ पूर्णपात्र अं० १२ चौड़ा अङ्गुल अग्नि० १ अं० २४।

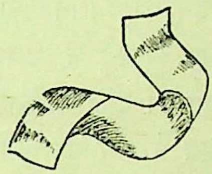




प्राशित्रहरण दर्पणाकार | पिष्टपात्री | षड्वत अङ्गुल १२ | पुरोडाश पात्री

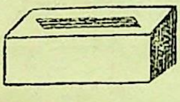
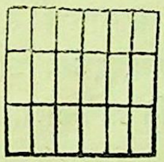
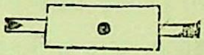
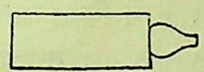





प्रणीता अं० १२ । प्रोक्षणी अं० १२ । अंगोछा २४ अङ्गुल लम्बा अरणी४ ।

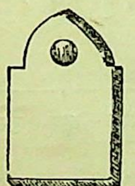
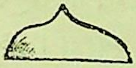
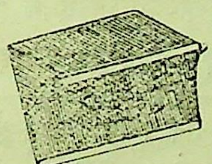





अङ्गुल ६ पोली अङ्गुल ४ ऊंची अधरारणी | उत्तरारणी टुकड़ा १८ | ओवली अं० १२ | चात्र अं० १२

मूलेखात दृषद् | उपल | शूर्प | इड़ा अं० १२


अथ ऋत्विग्वरणम् ॥

यजमानोक्तिः (ओमावसोः सदने सीद) इस मन्त्र का उच्चारण कर के ऋत्विज् को कर्म कराने की इच्छा से स्वीकार करने के लिये प्रार्थना करे (ऋत्विगुक्तिः) ओं सीदामि । ऐसा कह के जो उस के लिये आसन बिछाया हो उस पर बैठे (यजमानोक्तिः) अहमद्योक्तकर्मकरणाय भवन्तं वृणे (ऋत्विगुक्तिः) वृतोऽस्मि । ऋत्विजों का लक्षण । अच्छे विद्वान् धार्मिक जितेन्द्रिय कर्म करने में कुशल निर्लोभ परोपकारी दुर्व्यसनों से रहित कुलीन सुशील वैदिक मत वाले वेदवित् एक दो तीन अथवा चार का वर्ण करें जो एक हो तो उस का पुरोहित और जो दो हों तो ऋत्विक् पुरोहित और ३ तीन हों तो ऋत्विक् पुरोहित और अध्यक्ष और जो चार हों तो होता, अध्वर्यु, उद्गाता और ब्रह्मा, इन का आसन बेदी के चारों ओर अर्थात् होता का वेदी से पश्चिम आसन पूर्व मुख, अध्वर्यु का उत्तर आसन दक्षिण मुख, उद्गाता का पूर्व आसन पश्चिम मुख, और ब्रह्मा का दक्षिण आसन उत्तर में मुख होना चाहिये और यजमान का आसन पश्चिम में और वह पूर्वाभिमुख अथवा दक्षिण में आसन पर बैठ के उत्तराभिमुख रहे और इन ऋत्विजों को सत्कार पूर्वक आसन पर बैठाना, और वे प्रसन्नता पूर्वक आसन पर बैठें और उपस्थित कर्म के विना दूसरा कर्म वा दूसरी बात कोई भी न करें ॥

विधिः—जब कन्या रजस्वला होकर चौथे दिन के उपरान्त पांचवें दिन स्नान कर रजरोग रहित शुद्ध हो जाय तब जिस दिन गर्भाधान की रात्रि निश्चित की हो उस रात्रि में विवाह करने के लिये प्रथम ही ऊपर लिखी सब सामग्री जोड़ रखनी चाहिये अर्थात् यज्ञदेश यज्ञशाला, वेदी, ऋत्विक्, यज्ञपात्र, शाकल्य आदि सब सामग्री शुद्ध करके रखनी उचित है पश्चात् एक* घंटे मात्र रात्रि जाने पर ॥

ओं कामवेद ते नाममदो नामासि समानयामुꣳसुराते अभवत् । परमत्र जन्माग्ने तपसो निर्मितोऽसि स्वाहा ॥१॥ ओं इमं त उपस्थं मधुना सꣳसृजामि प्रजापतेर्मुखमेतद्द्वितीयम् । तेन पुꣳसोभिभवासि सर्वानवशान्वशिन्यसि राज्ञि स्वाहा॥ २ ॥ ओं अग्निं क्रव्यादमकृण्वन् गुहानाः स्त्रीणामुपस्थमृषयः पुराणाः । तेनाज्यमकृण्वꣳस्त्रैशृङ्गं त्वाष्ट्रं त्वयि तद्दधातु स्वाहा ॥ ३ ॥

* यदि आधी रात तक विधि पूरा न हो सके तो मध्याह्नोत्तर आरम्भ कर देवे कि जिस से मध्यरात्रि तक विवाह विधि पूरा हो जावे ॥

इन मन्त्रों से सुगन्धित शुद्ध जल से पूर्ण कलशों को लेके वधू वर स्नान कर पश्चात् वधू उत्तम वस्त्रालङ्कार धारण करके उत्तम आसन पर पूर्वाभिमुख बैठे तत्पश्चात् अपने २ जलपात्र सें सब जने जो कि यज्ञ करने को बैठे हों वे इन मन्त्रों से तीन २ आचमन करें अर्थात् एक २ से एक २ वार आचमन करें । वे मन्त्र ये हैं :—

ओं अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा ॥ १ ॥

इस से एक

ओं अमृतापिधानमसि स्वाहा ॥ २ ॥

इस से दूसरा

ओं सत्यं यशः श्रीर्मयि श्रीः श्रयतां स्वाहा ॥ ३ ॥

इस से तीसरा आचमन कर के तत्पश्चात् नीचे लिखे मन्त्रों से जल कर के अङ्गों का स्पर्श करे ॥

ओं वाङ्मऽआस्येऽस्तु ॥

इस मन्त्र से मुख

ओं नसोर्मे प्राणोऽस्तु ॥

इस मन्त्र से नासिका के दोनों छिद्र

ओं अक्ष्णोर्मे चक्षुरस्तु ॥

इस मन्त्र से दोनों आंखें

ओं कर्णयोर्मे श्रोत्रमस्तु ॥

इस मन्त्र से दोनों कान

ओं बाह्वोर्मे बलमस्तु ॥

इस मन्त्र से दोनों बाहु

ओं ऊर्वोर्मेऽ ओजोऽस्तु ॥

इस मन्त्र से दोनों जंघा और

ओं अरिष्टानि मे अङ्गानि तनूस्तन्वा मे सह सन्तु ॥

इस मन्त्र से दहिने हाथ से जल स्पर्श कर के मार्जन करना ॥

अथेश्वरस्तुतिप्रार्थनोपासनाः ॥

ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव । यद्भद्रन्तन्न आसुव ॥ १ ॥
यजु० । अ० ३० । मं० ३ ॥

अर्थः—हे (सवितः) सकल जगत् के उत्पत्ति कर्त्ता समग्र ऐश्वर्य्ययुक्त (देव) शुद्धस्वरूप सब सुखों के दाता परमेश्वर आप कृपा कर के (नः) हमारे (विश्वानि) संपूर्ण (दुरितानि) दुर्गुण, दुर्व्यसन और दुःखों को (परासुव) दूर कर दीजिये (यत्) जो (भद्रम्) कल्याणकारक गुण कर्म स्वभाव और पदार्थ हैं (तत्) वह सब हम को (आसुव) प्राप्त कीजिये ॥ १ ॥

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ॥ स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ २ ॥ यजुः । अ० । १३ । मं० ४ ॥

अर्थः-जो (हिरण्यगर्भः) स्वप्रकाश स्वरूप और जिस ने प्रकाश कर ने हारे सूर्य चन्द्रमादि पदार्थ उत्पन्न करके धारण किये हैं जो (भूतस्य) उत्पन्न हुए संपूर्ण जगत् का (जातः) प्रसिद्ध (पतिः) स्वामी (एकः) एक ही चेतन स्वरूप (आसीत्) था जो (अग्रे) सब जगत् के उत्पन्न होने से पूर्व (समवर्त्तत) वर्त्तमान था (सः) सो (इमम्) इस (पृथिवीम्) भूमि (उत) और (द्याम्) सूर्य्यादि को (दाधार) धारण कर रहा है हम लोग उस (कस्मै) सुखस्वरूप (देवाय) शुद्ध परमात्मा के लिये (हविषा) ग्रहण करने योग्य योगाभ्यास और अतिप्रेम से (विधेम) विशेष भक्ति किया करें ॥ २ ॥

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः । यस्य च्छायाऽमृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ३ ॥ य० । अ० । २५ । मं० १३ ।

अर्थः-(यः) जो (आत्मदाः) आत्मज्ञान का दाता (बलदाः) शरीर, आत्मा और समाज के बल का देने हारा (यस्य) जिस की (विश्वे) सब (देवाः) विद्वान् लोग (उपासते) उपासना करते हैं और (यस्य) जिस का (प्रशिषम्) प्रत्यक्षसत्यस्वरूप शासन और न्याय अर्थात् शिक्षा को मानते हैं (यस्य) जिस का (छाया)

आश्रय ही (अमृतम्) मोक्ष सुखदायक है (यस्य) जिन का न मानना अर्थात् भक्ति न करना ही (मृत्युः) मृत्यु आदि दुःख का हेतु है हम लोग उस (कस्मै) सुख स्वरूप (देवाय) सकल ज्ञान के देने हारे परमात्मा की प्राप्ति के लिये (हविषा) आत्मा और अन्तःकरण से (विधेम) भक्ति अर्थात् उसी की आज्ञा पालन करने में तत्पर रहैं ॥ ३ ॥

यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतो बभूव ।
य ईशेऽअस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ४ ॥
य० । अ० २३ । मं० ३ ॥

अर्थः—(यः) जो (प्राणतः) प्राण वाले और (निमिषतः) अप्राणिरूप (जगतः) जगत् का (महित्वा) अपने अनन्त महिमा से (एक, इत्) एक ही (राजा) विराजमान राजा (बभूव) है (यः) जो (अस्य) इस (द्विपदः) मनुष्यादि और (चतुष्पदः) गौआदि प्राणियों के शरीर की (ईशे) रचना करता है हम उस (कस्मै) सुख स्वरूप (देवाय) सकलैश्वर्य्य के देने हारे परमात्मा के लिये (हविषा) अपनी सकल उत्तम सामग्री से (विधेम) विशेष भक्ति करें ॥ ४ ॥

येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढा येन स्वः स्तभितं येन नाकः ।
यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ५ ॥
य० । अ० । ३२ । मं० ६ ॥

अर्थः—(येन) जिस परमात्मा ने (उग्रा) तीक्ष्णस्वभाव वाले (द्यौः) सूर्य आदि (च) और (पृथिवी) भूमि का (दृढा) धारण (येन) जिस जगदीश्वर ने (स्वः) सुख को (स्तभितम्) धारण और (येन) जिस ईश्वर ने (नाकः) दुःख रहित मोक्ष को धारण किया है (यः) जो (अन्तरिक्षे) आकाश म (रजसः) सब लोकलोकान्तरों को (विमानः) विशेषमानयुक्त अर्थात् जैसे आकाश में पक्षी उड़ते हैं वैसे सब लोकों को निर्माण करता और भ्रमण कराता है हम लोग उस (कस्मै) सुखदायक (देवाय) कामना करने के योग्य परब्रह्म की प्राप्ति के लिये (हविषा) सब सामर्थ्य से (विधेम) विशेष भक्ति करें ॥ ५ ॥

प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परि ता बभूव । यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नोऽअस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥ ६ ॥ ऋ० । मं० । १० । सू० । १२१ । मं० १० ॥

अर्थः—हे (प्रजापते) सब प्रजा के स्वामी परमात्मा (त्वत्) आप से (अन्यः) भिन्न दुसरा कोई (ता) उन (एतानि) इन (विश्वा) सब (जातानि) उत्पन्न हुए जड़ चेतनादि कों को (न) नहीं (परि, बभूव) तिरस्कार करता है अर्थात् आप सर्वोपरि हैं (यत्कामाः) जिस २ पदार्थ की कामना वाले हम लोग (ते) आपका (जुहुमः) आश्रय लेवें और वांछा करें (तत्) उस २ की कामना (नः) हमारी सिद्ध (अस्तु) होवें जिस से (वयम्) हम लोग (रयीणाम्) धनैश्वर्यों के (पतयः) स्वामी (स्याम) होवें ॥ ६ ॥

स नो बन्धुर्जनिता स विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा। यत्र देवाअमृतमानशानास्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त ॥ ७ ॥ य० अ० ३२। मं० १० ॥

अर्थः—हे मनुष्यो (सः) वह परमात्मा (नः) अपने लोगोंको (बन्धुः) भ्राता के समान सुखदायक (जनिता) सकल जगत् का उत्पादक (सः) वह (विधाता) सब कामों का पूर्ण करनेहारा (विश्वा) संपूर्ण (भुवनानि) लोकमात्र और (धामानि) नाम स्थान जन्मों को (वेद) जानता है और (यत्र) जिस (तृतीये) सांसारिक सुख दुःख से रहित नित्यानन्दयुक्त (धामन्) मोक्षस्वरूप धारण करने हारे परमात्मा में (अमृतम्) मोक्ष को (आनशानाः) प्राप्त होके (देवाः) विद्वान् लोग (अध्यैरयन्त) स्वेच्छा पूर्वक विचरते हैं वही परमात्मा अपना गुरु, आचार्य, राजा और न्यायाधीश है अपने लोग मिल के सदा उसकी भक्ति किया करें ॥ ७ ॥

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्। युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठान्ते नम उक्तिं विधेम ॥८॥ य० । अ० । ४० । मं० १६ ॥

अर्थः—हे (अग्ने) स्वप्रकाश ज्ञानस्वरूप सब जगत् के प्रकाश करने हारे (देव) सकल सुखदाता परमेश्वर आप जिस से (विद्वान्) संपूर्ण विद्यायुक्त हैं कृपा कर के (अस्मान्) हम लोगों को (राये) विज्ञान वा राज्यादि ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये (सुपथा) अच्छे धर्मयुक्त आप्त लोगों के मार्ग से (विश्वानि) संपूर्ण (वयुनानि) प्रज्ञान और उत्तम कर्म (नय) प्राप्त कराइये और (अस्मत्) हम से (जुहुराणम्) कुटिलतायुक्त (एनः) पापरूप कर्म को (युयोधि) दूर कीजिये इस कारण हम

लोग (त) आप की (भूयिष्ठाम्) बहुत प्रकार की स्तुतिरूप (नमउक्तिम्) नम्रतापूर्वक प्रशंसा (विधेम) सदा किया करें और सर्वदा आनन्द में रहें ॥ ८ ॥

इतीश्वरस्तुतिप्रार्थनोपासनाप्रकरणम् ॥

अथ स्वस्तिवाचनम्

अ॒ग्निमी॑ळे पु॒रोहि॑तं य॒ज्ञस्य॑ दे॒वमृ॒त्विज॑म् । होता॑रं रत्न॒धात॑मम् ॥ १ ॥ स नः॑ पि॒तेव॑ सू॒नवेऽग्ने॑ सूपाय॒नो भ॑व । सच॑स्वा नः स्व॒स्तये॑ ॥ २ ॥ ऋ० । मं० । १ । सू० १ । मं० १ । ९ ॥ स्व॒स्ति नो॑ मिमीताम॒श्विना॒ भगः॑ स्व॒स्ति दे॒व्यदि॑तिरन॒र्वणः॑ । स्व॒स्ति पू॒षा असु॑रो दधातु नः स्व॒स्ति द्यावा॑पृथि॒वी सु॑चे॒तुना॑ ॥ ३ ॥ स्व॒स्तये॑ वा॒युमुप॑ ब्रवामहै॒ सोमं॑ स्व॒स्ति भुव॑नस्य॒ यस्पतिः॑ । बृह॒स्पतिं॒ सर्व॑गणं स्व॒स्तये॑ स्व॒स्तय॑ आदि॒त्यासो॑ भवन्तु नः ॥ ४ ॥ विश्वे॑ दे॒वा नो॑ अ॒द्या स्व॒स्तये॑ वैश्वान॒रो वसु॑र॒ग्निः स्व॒स्तये॑ । दे॒वा अ॑वन्त्वृ॒भवः॑ स्व॒स्तये॑ स्व॒स्ति नो॑ रु॒द्रः पा॒त्वंह॑सः । ५ ॥ स्व॒स्ति मि॑त्रावरुणा स्व॒स्ति प॑थ्ये रेवति । स्व॒स्ति न॒ इन्द्र॑श्चा॒ग्निश्च॑ स्व॒स्ति नो॑ अदिते कृधि ॥ ६ ॥ स्व॒स्ति पन्था॒मनु॑ चरेम सूर्याचन्द्र॒मसा॑विव । पुन॒र्दद॒ताघ्न॑ता जान॒ता सं ग॑मेमहि ॥ ७ ॥ ऋ० मं० ५ सू० ५१ ॥ ये दे॒वानां॑ य॒ज्ञिया॑ य॒ज्ञिया॑नां॒ मनो॒र्यज॑त्रा अ॒मृता॑ ऋत॒ज्ञाः । ते नो॑ रासन्तामुरुगा॒यम॒द्य यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः॒ सदा॑ नः ॥ ८ ॥ ऋ० मं० ७ । सू० ३५ ॥

येभ्यो॑ मा॒ता मधु॑म॒त्पिन्व॑ते॒ पयः॑ पी॒यूषं॒ द्यौरदि॑ति॒रद्रि॑बर्हाः । उ॒क्थशु॑ष्मान् वृषभ॒रान्त्स्वप्न॑सस्ताँ आ॑दि॒त्याँ अनु॑मदा स्व॒स्तये॑ ॥ ९ ॥ नृ॒चक्ष॑सो॒ अनि॑मिषन्तो अ॒र्हणा॑ बृ॒हद्दे॒वासो॑ अमृत॒त्वमा॑नशुः । ज्यो॒तीर॑था॒ अहि॑माया॒ अना॑गसो दि॒वो व॒र्ष्माणं॑ वसते स्व॒स्तये॑ ॥ १० ॥ स॒म्राजो॒ ये सु॒वृधो॑ य॒ज्ञमा॑य॒युरप॑रिह्वृता दधि॒रे दि॒वि क्षय॑म् । ताँ आ वि॑वास॒ नम॑सा सुवृ॒क्तिभि॑र्म॒हो आ॑दि॒त्याँ अदि॑तिं स्व॒स्तये॑ ॥ ११ ॥ को व॒: स्तोमं॑ राधति॒ यं जुजो॑षथ॒ विश्वे॑ देवासो मनुषो॒ यति॒ ष्ठन॑ । को वो॑ऽध्व॒रं तु॑विजाता॒ अरं॑ कर॒द्यो न॒: पर्ष॒दत्यंहः॑ स्व॒स्तये॑ ॥ १२ ॥ येभ्यो॒ होत्रां॑ प्रथ॒माया॑येजे॒ मनु॒: समि॑द्धाग्नि॒र्मन॑सा स॒प्त होतृ॑भिः । त आ॑दित्या॒ अभ॑यं॒ शर्म॑ यच्छत सु॒गा नः॑ कर्त सु॒पथा॑ स्व॒स्तये॑ ॥ १३ ॥ य ईशि॑रे॒ भुव॑नस्य॒ प्रचे॑तसो॒ विश्व॑स्य स्था॒तुर्जग॑तश्च॒ मन्त॑वः । ते नः॑

कृतादकृतादेनसस्पर्यद्यादेवासः पिपृता स्वस्तये ॥ १४ ॥ भरेष्विन्द्रं सुहवं
हवामहेंऽहोमुचं सुकृतं दैव्यं जनम् । अग्निं मित्रं वरुणं सातये भगं द्यावापृ-
थिवी मरुतः स्वस्तये ॥ १५ ॥ सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसं सुशर्माणमदि-
तिं सुप्रणीतिम् । दैवीं नावं स्वरित्रामनागसमस्रवन्तीमा रुहेमा स्वस्तये ॥१६॥
विश्वे यजत्रा अधि वोचतोतये त्रायध्वं नो दुरेवाया अभिह्रुतः । सत्यया वो
देवहूत्या हुवेम शृण्वतो देवा अवसे स्वस्तये ॥ १७ ॥ अपामीवामप विश्वा-
मनाहुतिमरातिं दुर्विदत्रामघायतः । आरे देवा द्वेषो अस्मद्युयोतनोरुणः
शर्म यच्छता स्वस्तये ॥ १८ ॥ अरिष्टः स मर्त्तो विश्व एधते प्र प्रजाभिर्जा-
यते धर्मणस्परि । यमादित्यासो नयथा सुनीतिभिरति विश्वानि दुरिता स्वस्त-
ये ॥ १९ ॥ यं देवासोऽवथ वाजसातौ यं शूरसाता मरुतो हिते धने ।
प्रातर्यावाणं रथमिन्द्र सानसिमरिष्यन्तमा रुहेमा स्वस्तये ॥ २० ॥ स्वस्ति
नः पथ्यासु धन्वसु स्वस्त्यप्सु वृजने स्वर्वति । स्वस्ति नः पुत्रकृथेषु योनिषु
स्वस्ति राये मरुतो दधातन ॥ २१ ॥ स्वस्तिरिद्धि प्रपथे श्रेष्ठा रेक्णस्वत्यभि
या वाममेति । सा नो अमा सो अरणे नि पातु स्वावेशा भवतु देवगोपा
॥ २२ ॥ ऋ० मं० १० । सू० ६३ ॥

इषे त्वोर्ज्जे त्वा वायवस्थ देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मण
आप्यायध्वमघ्न्या इन्द्राय भागं प्रजावतीरनमीवा अयक्ष्मा मा वस्तेन ईशत
माघशंᳬसो ध्रुवा अस्मिन् गोपतौ स्यात बह्वीर्यजमानस्य पशून् पाहि ॥ २३ ॥
यजु० । अ० १ । मं० १ ॥

आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतोऽदब्धासोऽअपरीतास उद्भिदः ।
देवा नो यथा सदमिद्वृधेऽअसन्नप्रायुवो रक्षितारो दिवेदिवे ॥ २४ ॥ देवानां
भद्रा सुमतिर्ऋजूयतां देवानाᳬं रातिरभि नो निवर्त्तताम् । देवानाᳬं सख्यमुप-
सेदिमा वयं देवा न आयुः प्रतिरन्तु जीवसे ॥ २५ ॥ तमीशानं जगतस्तस्थु-
षस्पतिं धियं जिन्वमवसे हूमहे वयम् । पूषा नो यथा वेदसामसद्वृधे रक्षिता
पायुरदब्धः स्वस्तये ॥६॥ स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥२७॥ भद्रं कर्णेभिः
शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः । स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाᳬंसस्तनूभिर्व्यशेमहि
देवहितं यदायुः ॥२८॥ यजुः अ० २५ । म० १४ । १५ । १८ । १९ ।२१॥

२ ३ १ १ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ १ २२ ३ १ २
अग्न आयाहि वीतये गृणानो हव्यदातये । नि होता सत्सिबर्हिषि ॥ २९ ॥
१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ ३ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
त्वमग्ने यज्ञानाᳬहोता विश्वेषाᳬ हितः । देवेभिर्मानुषे जने ॥ ३० ॥ सा० छन्द आ० प्रपा० १ । मं० १ । २ ॥

ये त्रिषप्ताः परि यन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रतः । वाचस्पतिर्बला तेषां तन्वो अद्य दधातु मे ॥ ३१ ॥ अथर्व० कां० १ । सू० १ । वर्ग १ । अनु० १ । प्रपा० १ । मं० १ ॥

इति स्वस्तिवाचनम् ॥

अथ शान्तिप्रकरणम् ॥

शन्न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शन्न इन्द्रावरुणा रातहव्या । शमिन्द्रासोमा सुविताय शंयोः शन्न इन्द्रापूषणा वाजसातौ ॥ १ ॥ शन्नो भगः शमु नः शंसो अस्तु शन्नः पुरन्धिः शमु सन्तु रायः । शन्नः सत्यस्य सुयमस्य शंसः शन्नो अर्य्यमा पुरुजातो अस्तु ॥ २ ॥ शन्नो धाता शमु धर्त्ता नो अस्तु शन्न उरूची भवतु स्वधाभिः । शं रोदसी बृहती शं नो अद्रिः शं नो देवानां सुहवानि सन्तु ॥३॥ शन्नो अग्निर्ज्योतिरनीको अस्तु शन्नो मित्रावरुणावश्विना शम् । शन्नः सुकृतां सुकृतानि सन्तु शन्न इषिरो अभिवातु वातः ॥ ४ ॥ शन्नो द्यावापृथिवी पूर्वहूतौ शमन्तरिक्षं दृशये नो अस्तु । शं न ओषधीर्वनिनो भवन्तु शं नो रजसस्पतिरस्तु जिष्णुः ॥ ५ ॥ शन्न इन्द्रो वसुभिर्देवो अस्तु शमादित्येभिर्वरुणः सुशंसः । शं नो रुद्रो रुद्रेभिर्जलाषः शं नस्त्वष्टाग्नाभिरिह शृणोतु ॥ ६ ॥ शं नः सोमो भवतु ब्रह्म शं नो ग्रावाणः शमु सन्तु यज्ञाः । शं नः स्वरूणां मितयो भवन्तु शं नः प्रस्वः शम्वस्तु वेदिः ॥७॥ शं नः सूर्य उरुचक्षा उदेतु शं नश्चतस्रः प्रदिशो भवन्तु । शं नः पर्वता ध्रुवयो भवन्तु शं नः सिन्धवः शमु सन्त्वापः ॥८॥ शं नो अदितिर्भवतु व्रतेभिः शं नो भवन्तु मरुतः स्वर्काः । शं नो विष्णुः शमु पूषा नो अस्तु शं नो भवित्रं शम्वस्तु वायुः ॥ ९ ॥ शं नो देवः सविता त्रायमाणः शं नो भवन्तूषसो विभातीः । शं नः पर्जन्यो भवतु प्रजाभ्यः शं नः क्षेत्रस्य पतिरस्तु शम्भुः ॥ १० ॥ शं नो

देवा विश्वदेवा भवन्तु शं सरस्वती सह धीभिरस्तु । शमभिषाचः शमु रातिषाचः शं नो दिव्याः पार्थिवाः शन्नो अप्याः ॥ ११ ॥ शं नः सत्यस्य पतयो भवन्तु शं नो अर्वन्तः शमु सन्तु गावः । शं न ऋभवः सुकृतः सुहस्ता शं नो भवन्तु पितरो हवेषु ॥ १२ ॥ शं नो अज एकपाद्देवो अस्तु शं नोऽहिर्बुध्न्यः शं समुद्रः । शं नो अपांनपात्पेरुरस्तु शं नः पृश्निर्भवतु देवगोपाः ॥ १३ ॥ ऋ० मं० ७ । सू० ३५ । मं० १ । १३ ॥

इन्द्रो विश्वस्य राजति शन्नोऽअस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे ॥१४॥ शं नो वातः पवताᳬ शं नस्तपतु सूर्य्यः । शं नः कनिक्रदद्देवः पर्जन्योऽअभि वर्षतु ॥ १५ ॥ अहानि शं भवन्तु नः शᳬ रात्रीः प्रतिधीयताम् । शं न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शं न इन्द्रावरुणा रातहव्या । शं न इन्द्रापूषणा वाजसातौ शमिन्द्रासोमा सुविताय शं योः ॥ १६ ॥ शं नो देवीरभिष्टयऽआपो भवन्तु पीतये । शंय्योरभिस्रवन्तु नः ॥ १७ ॥ द्यौः शान्तिरन्तरिक्षᳬ शान्तिः पृथिवीशान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः । वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वᳬ शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि ॥ १८ ॥ तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् । पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतᳬ शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ॥ १९ ॥ यजुः ० अ० ३६ । मं० ८ । १० । ११ । १२ । १७ । २४ ॥

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति । दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥ १ ॥ येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः । यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥ २ ॥ यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु । यस्मान्नऽऋते किं चन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥ ३ ॥ येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्परिगृहीतममृतेन सर्वम् । येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥४॥ यस्मिन्नृचः साम यजूᳬषि यस्मिन प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः। यस्मिंश्चित्तᳬ सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥ ५ ॥ सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिनइव । हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥ ६ ॥ य० अ० ३४ । मं० १६ ॥

१ २ ३ २ ३ ३ १ २ र ३ १ २ र १ २ ३ १ २
स नः पवस्व शङ्गवे शं जनाय शमर्वते । शᳬराजन्नोष धीभ्यः ॥ २० ॥

साम० उत्तरार्चिके० प्रपा० १ मं० ३ ॥ अभयं नः करत्यन्तरिक्षमभयं द्यावापृथिवी उभे इमे । अभयं पश्चादभयं पुरस्तादुत्तरादधरादभयं नो अस्तु ॥ ३४ ॥ अभयं मित्रादभयममित्रादभयं ज्ञातादभयं परोक्षात् । अभयं नक्तमभयं दिवा नः सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु ॥ १९ ॥ अथर्व० कां० १६ सू० १५ । ५ । ६ । इति शान्तिप्रकरणम् ॥

तत्पश्चात अग्न्याधान समिधान इस प्रकार करे !

ओं भूर्भुवः स्वः ॥

इस मन्त्र का उच्चारण करके ब्राह्मण, क्षत्रिय वा वैश्य के घर से अग्नि ला अथवा घृत का दीपक जला उस से कपूर लगा किसी एक पात्र में धर उस में छोटी २ लकड़ी लगा के यजमान वा पुरोहित उस पात्र को दोनों हाथों से उठा यदि गर्म होतो चिमटे से पकड़ कर अगले मन्त्र से अग्न्याधान करे वह मन्त्र यह है:—

ओं भूर्भुवः स्वर्द्यौरिव भूम्ना पृथिवीव वरिम्णा । तस्यास्ते पृथिवि देवयजनि पृष्ठेऽग्निमन्नादमन्नाद्यायादधे ॥ १ ॥ य० अ० ३ । मं० ५ ॥

इस मंत्र से वेदी के बीच में अग्नि को धर उस पर छोटे २ काष्ठ और थोड़ा कपूर धर अगला मन्त्र पढ़के व्यजन से अग्नि को प्रदीप्त करे ॥

ओं उद्बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि त्वमिष्टापूर्ते सᳬसृजेथामयं च । अस्मिन्त्सधस्थेऽअध्युत्तरस्मिन् विश्वेदेवा यजमानश्च सीदत ॥ यजु० अ० १५ । मं० ५४ ॥

जब अग्नि समिधाओं में प्रविष्ट होने लगे तब चन्दन की अथवा ऊपर लिखित पलाशादि की तीन लकड़ी आठ २ अंगुल की घृत में डुबा उन में से एक २ नीचे लिखे एक २ मंत्र से एक समिधा को अग्नि में चढ़ावें । वे मन्त्र ये हैं:—

ओं अयं त इध्मऽआत्मा जातवेदस्तेनेध्यस्व वर्धस्व चेद्ध वर्धय चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन समेधय, स्वाहा ॥ इदमग्नये जातवेदसे-इदन्न मम ॥ १ ॥

इस मन्त्र से एक ।

ओं समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम् । आस्मिन् हव्या जुहोतन, स्वाहा ॥ इदमग्नये-इदन्न मम ॥ २ ॥

इस से और

सुसमिद्धाय शोचिषे घृतं तीव्रं जुहोतन । अग्नये जातवेदसे, स्वाहा ॥
इदमग्नये-जातवेदसे इदन्न मम ॥ ३ ॥

इस मन्त्र से अर्थात् इन दोनों मन्त्रों से दूसरी

तन्त्वा समिद्भिरङ्गिरो घृतेन वर्द्धयामसि । बृहच्छोचा यविष्ठ्य स्वाहा ॥
इदमग्नयेऽङ्गिरसे—इदन्न मम ॥ ४ ॥
य० अ० ३ । मं० १ । २ । ३ ॥

इस मन्त्र से तीसरी समिधा की आहुति देवे ।

इन मन्त्रों से समिदाधान करके होम का शाकल्य जो की यथावत् विधि से बनाया हो, सुवर्ण, चांदी, कांसा आदि धातु के पात्र अथवा काष्ठ पात्र में वेदी के पास सुरक्षित धरें पश्चात् उपरि लिखित घृतादि जो कि उष्ण कर छान पूर्वोक्त सुगन्ध्यादि पदार्थ मिला कर पात्रों में रक्खा हो, उस (घृत वा अन्य मोहनभोगादि जो कुछ सामग्री हो) में से कम से कम ६ मासा भर अधिक से अधिक छटांक भर की आहुति देवे यही आहुति का प्रमाण है। उस घृत में से चमसा कि जिस में छः मासा ही घृत आवे ऐसा बनाया हो भर के नीचे लिखे मन्त्र से पांच आहुती देनी ॥

ओम् अयन्त इध्मऽआत्मा जातवेदस्तेनेध्यस्व वर्धस्व चेद्ध वर्धय चास्मान् प्रजयापशुभिर्ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन समेधय स्वाहा ॥ इदमग्नये जातवेदसे इदन्न मम ॥ १ ॥

तत्पश्चात् अञ्जली में जल ले के वेदी के पूर्व दिशा आदि चारों ओर छिड़कावें उस के ये मन्त्र हैं:—

ओम् अदितेऽनुमन्यस्व ॥
इस मन्त्र से पूर्व
ओम् अनुमतेऽनुमन्यस्व ॥
इस से पश्चिम
ओं सरस्वत्यनुमन्यस्व ॥
इस से उत्तर और

ओं देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय । दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतं नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचं नः स्वदतु ॥ यजु अ० ३० । मं० १ ॥

इस मन्त्र से वेदी के चारों ओर जल छिड़कावे इस के पश्चात् सामान्य होमाहुति

करें इस में से मुख्य होम के आदि और अन्त में जो आहुति दी जाती है उस में से यज्ञकुण्ड के उत्तर भाग में जो एक आहुति और यज्ञकुण्ड के दक्षिण में दूसरी आहुति देनी होती है उस का नाम (आघारावाज्याहुति) कहते हैं और कुण्ड के मध्य में आहुतियां दी जाती हैं उन को "आज्यभागाहुति' कहते हैं सो घृतपात्र में से स्रुवा को भर अंगूठा मध्यमा अनामिका से स्रुवा को पकड़ के-

ओम् अग्नये स्वाहा ॥ इदमग्नये—इदन्न मम ॥

इस मन्त्र से वेदी उत्तरभाग अग्नि में-

ओं सोमाय स्वाहा ॥ इदं सोमाय इदन्न मम ॥

इस मन्त्र से वेदी के दक्षिणभाग में प्रज्वलित समिधा पर आहुति देनी तत्पश्चात्—

ओं प्रजापतये स्वाहा ॥ इदं प्रजापतये—इदन्न मम ॥

ओम् इन्द्राय स्वाहा ॥ इदमिन्द्राय—इदन्न मम ॥

इन दोनों मन्त्रों से वेदी के मध्य में दो आहुतिं देनीं उस के पश्चात् चार आहुति अर्थात् आघारावाज्यभागाहुति दे के जब प्रधान होम अर्थात् जिस २ कर्म में जितना२ होम करना हो, करके पश्चात् पूर्णाहुति पूर्वोक्त चार (आघारावाज्यभागा०) देवें पुनः शुद्ध किये उसी घृतपात्र में से स्रुवा को भर के प्रज्वलित समिधाओं पर व्याहृति की चार आहुति देवें ॥

ओं भूरग्नये स्वाहा ॥ इदमग्नये—इदन्न मम ॥

ओं भुववार्यवे स्वाहा ॥ इदं वायवे—इदन्न मम ॥

ओं स्वरादित्याय स्वाहा ॥ इदमादित्याय—इदन्न मम ॥

ओं भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः स्वाहा ॥ इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः इदन्न मम ॥

ये चार घी की आहुति दे कर स्विष्टकृत होमाहुति एक ही है यह घृत की अथवा भात की देनी चाहिये उस का मन्त्रः—

ओं यदस्य कर्मणोऽत्यरीरिचं यद्वा न्यूनमिहाकरम् । अग्निष्टत्स्विष्टकृद्विद्यात्सर्वं स्विष्टं सुहुतं करोतु मे । अग्नये स्विष्टकृते सुहुतहुते सर्वप्रायश्चित्ताहुतीनां कामानां समर्द्धयित्रे सर्वान्नः कामान्त्समर्द्धय स्वाहा ॥ इदमग्नये स्विष्टकृते, इदन्न मम ॥

इस से एक आहुति करके प्राजापत्याहुति करे नीचे लिखे मन्त्र को मन में बोल के देनी चाहिये।

ओं प्रजापतये स्वाहा ॥ इदं प्रजापतये—इदन्न मम ॥

इस से मौन करके एक आहुति देकर चार आज्याहुति घृत की देवे।

ओं भूर्भुवः स्वः। अग्न आयूंषि पवस्व असुवोर्ज्जमिषं च नः। आरे बाधस्व दुच्छुनां स्वाहा ॥ इदमग्नये पवमानाय, इदन्न मम ॥ १ ॥ ओं भूर्भुवः स्वः। अग्निर्ऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः। तमीमहे महागयं स्वाहा ॥ इदमग्नये पवमानाय—इदन्न मम ॥ २ ॥ ओं भूर्भुवः स्वः। अग्ने पवस्व स्वपा अस्मे वर्चः सुवीर्यम्। दधद्रयिं मयि पोषं स्वाहा ॥ इदमग्नये पवमानाय—इदन्न मम ॥ ३ ॥ ऋ० मं० ९। सू० ६६। मं० १९। २०। २१ ॥

ओं भूर्भुवः स्वः। प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परि ता बभूव। यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणां स्वाहा ॥ इदं प्रजापतये—इदन्न मम ॥ ४ ॥ ऋ० मं० १०। सू० १२१ मं० १० ॥

इस से घृत की ४ आहुति करके "अष्टाज्याहुति" ये निम्नलिखित मन्त्रों से ८ आठ आहुति देवें।

ओं त्वन्नोऽअग्ने वरुणस्य विद्वान् देवस्य हेडोऽअवयासिसीष्ठाः। यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषांसि प्रमुमुग्ध्यस्मत् स्वाहा ॥ इदमग्नीवरुणाभ्याम्, इदन्न मम ॥ १ ॥ ओं स त्वन्नोऽअग्नेऽवमो भवोती नेदिष्ठोऽअस्या उषसो व्युष्टौ अवयक्ष्व नो वरुणं रराणो वीहि मृडीकं सुहवो न एधि स्वाहा ॥ इदमग्नीवरुणाभ्यां—इदन्न मम ॥ २ ॥ ऋ० मं० ४ सू० १। मं० ४। ५ ॥

ओं इमं मे वरुण श्रुधीहवमद्या च मृडय। त्वामवस्युराचके स्वाहा ॥ इदं वरुणाय। इदन्न मम ॥ ३ ॥ ऋ० मं० १। सू० २५ मं० १९ ॥

ओं तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदाशास्ते यजमानो हविर्भिः। अहेडमानो वरुणेह बोध्युरुशंस मा न आयुः प्रमोषीः स्वाहा ॥ इदं वरुणाय—इदन्न मम ॥ ४ ॥ ऋ० मं० १। सू० २४। मं० ११ ॥

ओं ये ते शतं वरुण ये सहस्रं यज्ञियाः पाशा वितता महान्तः। तेभिर्नोऽ अद्य सवितोत विष्णुर्विश्वे मुञ्चन्तु मरुतः स्वर्काः स्वाहा ॥ इदं वरुणाय

सवित्रे विष्णवे विश्वेभ्यो देवेभ्यो मरुद्भ्यः स्वर्केभ्यः । इदन्न मम ॥ ५ ॥ ओं अयाश्चाग्नेऽस्यनभिशस्तिपाश्च सत्यमित्वमयासि । अया नो यज्ञं वहास्यया नो धेहि भेषजꣳ स्वाहा ॥ इदमग्नये अयसे । इदन्न मम ॥ ६ ॥ ओं उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं विमध्यमं श्रथाय । अथा वयमादित्य व्रते तवानागसोऽदितये स्याम स्वाहा ॥ इदं वरुणायाऽऽदित्यायाऽदितये च । इदन्नमम ॥ ऋ० मं० १ । सू० २४ । मं० १५ ॥

ओं भवतन्नः स मनसौ सचेतसावरेपसौ । मा यज्ञꣳ हिꣳसिष्टं मा यज्ञपतिं जातवेदसौ शिवौ भवतमद्य नः स्वाहा ॥ इदं जातवेदोभ्यां । इदन्न मम ॥ य० अ० ५ । मं० ३ ॥

वैसे ही वर भी एकान्त अपने घर में जा के उत्तम बस्त्रालंकार करके यज्ञशाला में आ उत्तमासन पर पूर्वाभिमुख बैठ के पृष्ठ १८—२१ में लि० प्र० ईश्वर * स्तुति प्राथनोपासना कर वधू के घर को जाने का ढंग करे स्थालीपाकादि भी यथोक्त कर वेदी के समीप रक्खें । तत्पश्चात् कन्या के और वर पक्ष के पुरुष बड़े सामान से वर को घर ले जावें जिस समय वर वधू के घर प्रवेश करें उसी समय वधू और कार्यकर्त्ता मधुपर्क आदि से वर का निम्नलिखित प्रकार आदर सत्कार करें । उस की रीति यह है कि वर वधू के घर में प्रवेश करके पूर्वाभिमुख खड़ा रहे और वधू तथा कार्यकर्त्ता वर के समीप उत्तराभिमुख खड़े रह के वधू और कार्यकर्त्ता—

साधु भवानास्तामर्चयिष्यामो भवन्तम्

इस वाक्य को बोले उस पर वर—

ओं अर्च्चय

ऐसा प्रत्युत्तर देवे पुनः जो वधू और कार्यकर्त्ता ने वर के लिये उत्तम आसन सिद्ध कर रक्खा हो उस वधू हाथ में ले वर के आगे खड़ी रहे ॥

ओं विष्टरो विष्टरो विष्टरः प्रतिगृह्यताम् ॥

यह उत्तम आसन है आप ग्रहण कीजिये वर—

ओं प्रतिगृह्णामि ॥

इस वाक्य को बोल के वधू के हाथ से आसन ले बिछा उस पर सभा मंडप में पूर्वाभिमुख बैठ वर—

---

* विवाह में आये हुए स्त्री पुरुष एकाग्र चित्त ध्यानावस्थित हो के इन तीन कर्मों के अनुसार ईश्वर का चिन्तन किया करें ॥

ओं वर्चोऽस्मि समानानामुद्यतामिव सूर्यः। इमन्तमभितिष्ठामि यो मा कश्चाभिधासति॥

इस मन्त्र को बोले तत्पश्चात् कार्यकर्त्ता एक सुन्दर पात्र में पूर्ण जल भर के कन्या के हाथ में देवे और कन्या—

ओं पाद्यं पाद्यं पाद्यं प्रतिगृह्यताम्॥

इस वाक्य को बोल के वर के आगे धरे पुनः वर—

ओं प्रतिगृह्णामि॥

इस वाक्य को बोल के कन्या के हाथ से उदक ले पग * प्रक्षालन करे और उस समय—

ओं विराजो दोहोऽसि विराजो दोहमशीय मयि पाद्यायै विराजो दोहः॥

इस मन्त्र को बोले तत्पश्चात् फिर भी कार्यकर्त्ता दूसरा शुद्ध लोटा पवित्र जल से भर कन्या के हाथ में देवे पुनः कन्या—

ओं अर्घोऽर्घोऽर्घः प्रतिगृह्यताम्॥

इस वाक्य को बोल के वर के हाथ में देवे और वर—

ओं प्रतिगृह्णामि॥

इस वाक्य को बोल के कन्या के हाथ से जलपात्र ले के उस से मुखप्रक्षालन करे और उसी समय वर मुख धोके—

ओं आपस्थ युष्माभिः सर्वान्कामानवाप्नवानि। ओं समुद्रं वः प्रहिणोमि स्वां योनिमभिगच्छत। अरिष्टास्माकं वीरा मा परासेचिमत्पयः॥

इन मन्त्रों को बोले तत्पश्चात् वेदी के पश्चिम बिछाये हुए उसी शुभासन पर पूर्वाभिमुख बैठे तत्पश्चात् कार्यकर्त्ता एक सुन्दर उपपात्र जल से पूर्ण भर उस में आचमनी रख कन्या के हाथ में देवे और उस समय कन्या—

ओं आचमनीयमाचमनीयम्प्रतिगृह्यताम्॥

इस वाक्य को बोल के वर के सामने करे और वर—

ओं प्रतिगृह्णामि॥

---

* यदि घर का प्रवेशक द्वार पूर्वाभिमुख हो तो वर उत्तराभिमुख और वधू तथा कार्यकर्त्ता पूर्वाभिमुख खड़े रह के यदि ब्राह्मण वर्ण हों तो प्रथम दक्षिण पग पश्चात् बायां और अन्य क्षत्रियादि वर्ण हों तो प्रथम बायां पग धोवे पश्चात् दहना।

इस वाक्य को बोल के कन्या के हाथ में से जलपात्र को ले सामने धर उस में से दहिने हाथ में जल जितना अङ्गुलियों के मूल तक पहुंचे उतना लेके वर—

ओं आमागन् यशसा सꣳसृज वर्चसा । तं मा कुरु प्रियं प्रजानामधिपतिं पशूनामरिष्टिं तनूनाम् ॥

इस मन्त्र से एक आचमन इसी प्रकार दूसरी और तीसरी वार इसी मन्त्र को पढ़ के दूसरा और तीसरा आचमन करे तत्पश्चात् कार्यकर्त्ता मधुपर्क * का पात्र कन्या के हाथ में देदे और कन्या—

ओं मधुपर्को मधुपर्को मधुपर्कः प्रतिगृह्यताम् ॥

ऐसी विनती वर से करे और वर—

ओं प्रतिगृह्णामि ॥

इस वाक्य को बोल के कन्या के हाथ से ले और उस समय—

ओं मित्रस्य त्वा चक्षुषा प्रतीक्षे ॥

इस मन्त्रस्थ वाक्य को बोल के मधुपर्क को अपनी दृष्टि से देखे और:—

ओं देवस्य त्वा सवितुःप्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पुष्णो हस्ताभ्यां प्रतिगृह्णामि ।

इस मन्त्र को बोलके मधुपर्क के पात्र को वाम हाथ में लेवे और:—

ओं भूर्भुवः स्वः । मधु वाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः । माध्वीर्नस्सन्त्वोषधीः । भूर्भुवः स्वः । मधु नक्तमुतोषसो मधुमत्पार्थिवं रजः । मधु द्यौरस्तु नः पिता ॥ २॥ ओं भूर्भुवः स्वः । मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमाँ अस्तु सूर्यः । माध्वीर्गावो भवन्तु नः ॥ ३ ॥

इन तीनोंमन्त्रों से मधुपर्क की ओर अवलोकन करे—

ओं नमः श्यावास्यायान्नशने यत्तआविद्धं तत्ते निषकृन्तामि ॥

इस मन्त्र को पढ़, दहिने हाथ की अनामिका और अंगुष्ठ से मधुपर्क को तीन वार बिलोवे और उस मधुपर्क में सेवरः—

* मधुपर्क उस को कहते हैं जो दही में घी वा सहत मिलाया जाता है उस का परिमाण १२ बारह तोले दही में ४ चार तोले सहत अथवा ४ चार तोले घी मिलाना चाहिये और यह मधुपर्क कांसे के पात्र में होना उचित है ॥

ओं वसवस्त्वा गायत्रेण छन्दसा भक्षयन्तु ॥

इस मन्त्र से पूर्व दिशा ॥

ओं रुद्रास्त्वा त्रैष्टुभेन छन्दसा भक्षयन्तु ॥

इस मन्त्र से दक्षिण दिशा ॥

ओं आदित्यास्त्वा जागतेन छन्दसा भक्षयन्तु ॥

इस मन्त्र से पश्चिम दिशा और ॥

ओं विश्वे त्वा देवा आनुष्टुभेन छन्दसा भक्षयन्तु ॥

इस मंन्त्र से उत्तर दिशा में थोड़ा २ छोड़े अर्थात् छींटे देवे ।

ओं भूतेभ्यस्त्वा परिगृह्णामि ॥

इस मन्त्रस्थ वाक्य को बोल के मध्य भाग में से ले के ऊपर की ओर तीन वार फेंकना तत्पश्चात् उस मधुपर्क के तीन भाग कर तीन कांसे के पात्रों में धर भूमि में अपने सन्मुख तीनों पात्र रक्खे, रखके--

ओं यन्मधुनो मधव्यं परमꣳ रूपमन्नाद्यम् । तेनाहं मधुनो मधव्येन परमेण रूपेणान्नाद्येन परमो मधव्योऽन्नादोऽसानि ॥

इस मन्त्र को एक १ वार बोल के एक २ भाग में से वर थोड़ा २ प्राशन करे वा सब प्राशन करे जो उन पात्रों में शेष उच्छिष्ट मधुपर्क रहा हो वह किसी अपने सेवक को देवे वा जल में डाल देवे तत्पश्चात्---

ओं अमृतापिधानमसि स्वाहा ।

ओं सत्यं यशः श्रीर्मयि श्रीः श्रयतां स्वाहा ॥

इन दो मन्त्रों से दो आचमन अर्थात् एक से एक और दूसरे से दूसरा वर करे तत्पश्चात् वर पृष्ठ १७ में लि० प्र० चक्षुरादि इन्द्रियों का जल से स्पर्श करे पश्चात् कन्या —

ओं गोगौर्गौः प्रतिगृह्यताम् ।

इस वाक्य से वर की विनती करके अपनी शक्ति के योग्य वर को गोदानादि द्रव्य जो कि वर के योग्य हो अर्पण करे और वर --

ओं प्रतिगृह्णामि ॥

इस वाक्य से उस को ग्रहण करे इस प्रकार मधुपर्कविधि यथावत् कर के वधू

और कार्यकर्त्ता वर को सभामण्डपस्थान * से घर में ले जा के शुभ आसन पर पूर्वाभिमुख बैठा के वर के सामने पश्चिमाभिमुख वधू को बैठावे और कार्यकर्त्ता उत्तराभिमुख बैठ के—

ओं अमुक † गोत्रोत्पन्नामिमाममुकनाम्नीं × मलङ्कृतां कन्यां प्रतिगृह्णातु भवान् ॥

इस प्रकार बोल के वर का हाथ चत्ता अर्थात् हथेली ऊपर रख के उस के हाथ में वधू का दक्षिण हाथ चत्ता ही रखना और वर—

ओं प्रतिगृह्णामि ।

ऐसा बोले के—

ओं जरां गच्छ परिधत्स्व वासो भवा कृष्टीनामभिशस्ति पावा । शतं च जीव शरदः सुवर्चा रयिं च पुत्राननुसंव्ययस्वायुष्मतीदं परिधत्स्व वासः ।

इस मन्त्र को बोल के वधू को उत्तम वस्त्र देवे तत्पश्चात्—

ओं या अकृन्तन्न वयं या अतन्वत याश्च देवीस्तन्तूनभितो ततन्थ । तास्त्वा देवीर्जरसे संव्ययस्वायुष्मतीदं परिधत्स्व वासः ।

इस मन्त्र को बोल के वधू को वर उपवस्त्र देवे वह उपवस्त्र को यज्ञोपवीतवत् धारण करे ।

ओं परिधास्यै यशोधास्यै दीर्घायुत्वाय जरदष्टिरस्मि । शतं च जीवामि शरदः पुरूची रायस्पोषमभिसंव्ययिष्ये ।

इस मन्त्र को पढ़ के वर आप अधोवस्त्र धारण करे और:—

ओं यशसा मा द्यावापृथिवी यशसेन्द्राबृहस्पती । यशो भगश्च मा विदद्यशो मा प्रतिपद्यताम् ॥

---

* यदि सभामण्डप स्थापन न किया हो तो जिस घर में मधुपर्क हुआ हो उस से दूसरे घर में वर को लेजावे ॥

† अमुक इस पद के स्थान में जिस गोत्र और कुल में वधू उत्पन्न हुई हो उस का उच्चारण अर्थात् उस का नाम लेना ॥

× "अमुकनाम्नीम्" इस स्थान पर वधू का नाम द्वितीया विभक्ति के एकवचन से बोलना ॥

इस मन्त्र को पढ़ के दुपट्टा धारण करे । इस प्रकार वधू वस्त्र परिधान कर के जब तक सम्हले तब तक कार्यकर्त्ता अथवा दूसरा कोई यज्ञमण्डप में जा कुण्ड के समीपस्थ हो पृष्ठ २५ में लिखा इन्धन और कर्पूर वा घृत से कुण्ड के अग्नि को प्रदीप्त करे और आहुति के लिये सुगन्ध डाला हुआ घी बटलोई में कर के कुण्ड के अग्नि पर गरम कर कांसे के पात्र में रक्खे और स्रुवादि होम के पात्र तथा शुद्ध जल-पात्र इत्यादि सामग्री यज्ञकुण्ड के समीप जोड़ कर रक्खे और वर पक्ष का एक पुरुष शुद्धवस्त्रधारण कर शुद्ध जल से पूर्ण एक कलश को ले के यज्ञकुण्ड की परिक्रमा कर कुण्ड के दक्षिण भाग में उत्तराभिमुख हो कलशस्थापन अर्थात् भूमि पर अच्छे प्रकार अपने आगे धर के जब तक विवाह का कृत्य पूर्ण न हो जाय तब तक उत्तराभिमुख बैठा रहे और उसी प्रकार वर के पक्ष का दूसरा पुरुष हाथ में दण्ड ले के कुण्ड के दक्षिणभाग में कार्य समाप्तिपर्यन्त उत्तराभिमुख बैठा रहे और इसी प्रकार सहोदर वधू का भाई अथवा सहोदर न हो तो चचेरा भाई, मामा का पुत्र अथवा मौसी का लड़का हो वह चावल वा जुवार की धाणी और शमी वृक्ष के सूखे पत्ते इन दोनों को मिला कर शमीपत्रयुक्त धाणी की ४ चार अञ्जली एक शुद्ध सूप में रख के धाणी सहित सूप ले के यज्ञकुण्ड के पश्चिम भाग में पूर्वाभिमुख बैठा रहे तत्पश्चात् कार्यकर्त्ता एक सपाट शिला जोकि सुन्दर चीकनी हो उसको तथा वधू और वर को कुण्ड के समीप बैठाने के लिये दो कुशासन वा यज्ञीय तृणासन अथवा यज्ञीय वृक्ष की छाल के जो कि प्रथम से सिद्ध कर रक्खे हों उन आसनें को रखवावे तत्पश्चात् वस्त्रधारण करे हुई कन्या को कार्यकर्त्ता वर के सन्मुख लावे और उस समय वर और कन्या—

ओं समञ्जन्तु विश्वे देवाः समापो हृदयानि नौ । सं मातरिश्वा सं धाता समुदेष्ट्री दधातु नौ * ॥ १ ॥

---

* वर और कन्या बोले कि हे "विश्वे, देवाः" इस यज्ञशाला में बैठे हुए विद्वान् लोगो आप हम दोनों को "समञ्जन्तु" निश्चय करके जानें कि अपनी प्रसन्नता पूर्वक गृहाश्रम में एकत्र रहने के लिये एक दूसरे का स्वीकार करते हैं कि "नौ" हमारे दोनों के "हृदयानि" हृदय "आप" जल के समान "सम्" शान्त और मिले हुए रहेंगे जैसे "मातरिश्वा" प्राण वायु हम को प्रिय है वैसे "सम्" हम दोनों एक दूसरे से सदा प्रसन्न रहेंगे जैसे "धाता" धारण करने हारा परमात्मा सब में "सम्" मिला हुआ सब जगत् को धारण करता है वैसे हम दोनों एक दूसरे का धारण करेंगे जैसे "समुदेष्ट्री" उपदेश करने हारा श्रोताओं से प्रीति करता है वैसे "नौ" हमारे दोनों का आत्मा एक दूसरे के साथ दृढ़ प्रेम को "दधातु" धारण करे ॥

इस मन्त्र को बोलें तत्पश्चात् वर दक्षिण हाथ से वधू का दक्षिण हाथ पकड़ के:—

ओं यदैषि मनसा दूरं दिशोऽनुपवमानो वा । हिरण्यपर्णो वैकर्णः स त्वा मन्मनसां करोतु † असौ ॥ २ ॥

इस मन्त्र को बोल के उस को ले के घर के बाहर मण्डपस्थान में कुण्ड के समीप हाथ पकड़े हुए दोनों आवें और वधू तथा वर—

ओं भूर्भुवः स्वः अघोरचक्षुरपतिघ्न्येधि शिवा पशुभ्यः सुमनाः सुवर्चाः । वीरसूर्देवृकामा स्योना शन्नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे †॥३॥ ओं भूर्भुवः स्वः । सा नः पूषा शिवतमामैरयसा न ऊरू उशति विहर । यस्यामुशन्तः प्रहराम शेफं यस्यामुकामा बहवो निविष्ट्यै ॥४॥

---

† (असौ) इस पद के स्थान में कन्या का नाम उच्चारण करना हे वरानने वा हे वरानन (यत्) जो तू (मनसा) अपनी इच्छा से मुझ को जैसे (पवमानः) पवित्र वायु (वा) जैसे (हिरण्यपर्णो, वैकर्णः) तेजोमय जल आदि को किरणों से ग्रहण करने वाला सूर्य (दूरम्) दूरस्थ पदार्थों और (दिशोनु) दिशाओं को प्राप्त होता है वैसे तू प्रेमपूर्वक अपनी इच्छा से मुझ को प्राप्त होती वा होता है उस (त्वा) तुझ को (सः) वह परमेश्वर (मन्मनसाम्) मेरे मन को अनुकूल (करोतु) करे और हे (वीर) जो मन से मुझ को (एषि) प्राप्त होते हो उस आप को जगदीश्वर मेरे मन के अनूकुल सदा रक्खे ।

† हे वरानने ' अपतिघ्नि ' पति से विरोध न करने हारी तू जिस के (ओम्) अर्थात् रक्षा करने वाला (भूः) प्राणदाता (भुवः) सब दुःखों को दूर करने हारा (स्वः) सुखस्वरूप और सब सुखों के दाता आदि नाम हैं उस परमात्मा की कृपा और अपने उत्तम पुरुषार्थ से हे " अघोर चक्षुः " प्रियदृष्टि (एधि) हो (शिवा) मंगल करने हारी ' पशुभ्यः ' सब पशुओं को सुखदाता ' सुमनाः ' पवित्रान्तःकरणयुक्त प्रसन्नचित्त ' सुवर्चाः ' सुन्दर शुभ गुण कर्म्म स्वभाव और विद्या से सुप्रकाशित ' वीरसू ' उत्तम वीर पुरुषों को उत्पन्न करने हारी 'देवृकामा ' देवर की कामना करती हुई अर्थात् नियोग की भी इच्छा करने हारी ' स्योना ' सुखयुक्त हो के ' नः ' हमारे ' द्विपदे ' मनुष्यादि के लिये ' शम् ' सुख करने हारी ' भव ' सदा हो और ' चतुष्पदे ' गाय आदि पशुओं को भी ' शम् ' सुख देने हारी हो वैसे ही मैं तेरा पति भी वर्त्ता करूं ॥

इन चार मन्त्रों को वर बोल के दोनों वर वधू यज्ञकुण्ड की प्रदक्षिणा करके कुण्ड के पश्चिम भाग में प्रथम स्थापन किये हुये आसन पर पूर्वाभिमुख वर के दक्षिण भाग में वधू और वधू के वाम भाग में वर बैठ के वधूः—

ओं प्र मे पतियानः पन्थाः कल्पताᳫं शिवा अरिष्टा पतिलोकं गमेयम् ।

इस मन्त्र को बोले तत्पश्चात पृष्ठ ११ में लिखे प्रमाणे यज्ञकुण्ड के समीप दक्षिण भाग में उत्तराभिमुख पुरोहित की स्थापना करनी तत्पश्चात् पृ० १७ में लिखे०

ओं अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा ।

इत्यादि तीन मन्त्रों में प्रत्येक मन्त्र से एक२ आचमन वैसे तीन आचमन वर वधू और पुरोहित और कार्यकर्त्ता करके हस्त और मुख प्रक्षालन एक शुद्ध पात्र में करके दूर रखवा दे हाथ और मुख पोछ के पृ० २५ में लिखे० (ओं अयन्त इध्म०) इत्यादि-मन्त्रों से समिदाधान और पृ० २६ में लिखे० ।

ओं अदितेनुमन्यस्व ।

इत्यादि तीन मन्त्रों से कुण्ड की तीन ओर और (ओं देवसवितः प्रसुव०) इस मन्त्र से कुण्ड की चारों ओर दक्षिण हाथ की अंजली से शुद्ध जल सेचन करके कुण्ड में डाली हुई समिधा प्रदीप्त हुए पश्चात् पृ० २७ में लि० वधू वर पुरोहित और कार्यकर्त्ता आघारावाज्यभागाहूति ४ चार घी की देवें तत्पश्चात् उसी पृ० में लि० व्याहृति आहुति ४ चार घी की और पृ० २८—२९ में लि० अष्टाज्याहुति ८ आठ ये सब मिल के १६ सोलह आज्याहुति दे के प्रधान होम का प्रारम्भ करें प्रधान होम के समय वधू अपने दक्षिण हाथ को वर के दक्षिण स्कन्धे पर स्पर्श करके पृ० २८ में लि० (ओं भूर्भुवः स्वः अग्नआयूंषि०) इत्यादि चार मंत्रों से अर्थात् एक २ से एक २ मिल के चार आज्याहूति क्रम से करें और—

ओं भूर्भुवः स्वः । त्वमर्यमा भवसि यत्कनीनां नाम स्वधावन्गुह्यं बिभर्षि । अञ्जन्ति मित्रं सुधितं न गोभिर्यद्दम्पती समनसा कृणोषि स्वाहा ॥ इदमग्नये । इदन्न मम् ॥

इस मंत्र को बोल के ५ पांचवी आज्याहूति देनी तत्पश्चात्—

ओं ऋतषाड् ऋतधामाग्निर्गन्धर्वः । स न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् । इदमृतासाहे ऋतधाम्ने अग्नये गन्धर्वाय, इदन्न मम ॥ १ ॥ ओं ऋताषाडृतधामाग्निर्गन्धर्वस्तस्यौषधयोऽप्सरसो मुदो नाम । ताभ्यः स्वाहा । इद-

मोषधिभ्योऽप्सरोभ्यो मुद्भ्यः, इदन्न मम ॥ २ ॥ ओं सꣳहितो विश्वसामा सूर्यो गन्धर्वः । स न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् । इदं सꣳहिताय विश्वसाम्ने सूर्याय गन्धर्वाय, इदन्न मम ॥ ३ ॥ ओं सꣳहितो विश्वसामा सूर्यो गन्धर्वस्तस्य मरीचयोऽप्सरस आयुवो नाम । ताभ्यस्स्वाहा । इदं मरीचिभ्योऽप्सरोभ्य आयुभ्यः इदन्न मम ॥४॥ ओं सुषुम्णः सूर्यरश्मिश्चन्द्रमा गन्धर्वः । स न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् । इदं सुषुम्णाय, सूर्यरश्मये, चन्द्रमसे, गन्धर्वाय; इदन्न मम ॥ ५ ॥ ओं सुषुम्णः सूर्यरश्मिश्चन्द्रमा गन्धर्वस्तस्य नक्षत्राण्यप्सरसो भेकुरयो नाम । ताभ्यः स्वाहा इदं नक्षत्रेभ्योऽप्सरोभ्यो भेकुरिभ्यः, इदन्न मम ॥ ६ ॥ ओं इषिरो विश्वव्यचा वातो गन्धर्वः । स न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् ॥ इदमिषिराय विश्वव्यचसे वाताय गन्धर्वाय, इदन्न मम ॥ ७ ॥ ओं इषिरो विश्वव्यचा वातो गन्धर्वस्तस्यापोऽप्सरस ऊर्ज्जो नाम । ताभ्यः स्वाहा इदमद्भ्यो अप्सरोभ्यऽऊर्ग्भ्यः, इदन्न मम ॥ ८ ॥ ओं भुज्युः सुपर्णो यज्ञो गन्धर्वः । स न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् । इदं भुज्यवे सुपर्णाय यज्ञाय गन्धर्वाय, इदन्न मम ॥ ९ ॥ ओं भुज्युः सुपर्णो यज्ञो गन्धर्वस्तस्य दक्षिणा अप्सरसः स्तावा नाम । ताभ्यः स्वाहा । इदं दक्षिणाभ्यो अप्सरोभ्यः स्तावाभ्यः; इदन्न मम ॥ १० ॥ ओं प्रजापतिर्विश्वकर्मा मनो गन्धर्वः । स न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् । इदं प्रजापतये विश्वकर्मणे मनसे गन्धर्वाय, इदन्न मम ॥ ११ ॥ ओं प्रजापतिर्विश्वकर्मा मनो गन्धर्वस्तस्यऽ ऋक्सामान्यप्सरस एष्टयो नाम । ताभ्यः स्वाहा । इदमृक्सामेभ्योऽप्सरोभ्य एष्टिभ्यः; इदन्न मम ॥ १२ ॥

इन १२ बारह मन्त्रों से १२ बारह आज्याहुति देनी तत्पश्चात् (जयाहोम) करना ॥

ओं चित्तं च स्वाहा । इदं चित्ताय, इदन्न मम ॥१॥ ओं चित्तिश्च स्वाहा । इदं चित्त्यै, इदन्न मम ॥ २ ॥ ओं आकूतं च स्वाहा । इदमाकूताय, इदन्न मम ॥ ३ ॥ ओं आकूतिश्च स्वाहा । इदमाकूत्यै, इदन्न मम ॥ ४ ॥ ओं विज्ञातञ्च स्वाहा । इदं विज्ञाताय, इदन्न मम ॥ ५ ॥ ओं विज्ञातिश्च स्वाहा । इदं विज्ञात्यै, इदन्न मम ॥ ६ ॥ ओं मनश्च स्वाहा । इदं मनसे, इदन्न मम ॥ ७ ॥ ओं शक्करी स्वाहा । इदं शक्करीभ्यः, इदन्न मम ॥ ८ ॥ ओं दर्शश्च स्वाहा । इदं दर्शाय, इदन्न मम ॥ ९ ॥ ओं पौर्णमासं च स्वाहा ।

इदं पौर्णमासाय, इदन्न मम ॥ १० ॥ ओं बृहच्च स्वाहा । इदं बृहते, इदन्न मम ॥ ११ ॥ ओं रथन्तरञ्च स्वाहा । इदं रथन्तराय, इदन्न मम ॥ १२ ॥ ओं प्रजापतिर्जयानिन्द्राय वृष्णे प्रायच्छदुग्रः पृतना जयेषु तस्मै विशः सम-नमन्त सर्वाःस उग्रःस इहव्यो बभूव स्वाहा । इदं प्रजापतये जयानिन्द्राय, इदन्न मम ॥ १३ ॥

इन प्रत्येक मंत्रों से एक २ करके जयाहोम की १३ तेरह आज्याहुती देनी तत्पश्चात अभ्यातन होम करना—इस के मंत्र ये हैं:—

ओं अग्निर्भूतानामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशि-ष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्याᳬ स्वाहा ॥ इदमग्नये भूताना-मधिपतये, इदन्न मम ॥ १ ॥ ओं इन्द्रो ज्येष्ठानामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्याᳬ स्वाहा । इदामिन्द्राय ज्येष्ठनामधिपतये । इदन्न मम ॥ २ ॥ ओं यमः पृथि-व्याऽअधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्याᳬस्वाहा ॥ इदं यमाय पृथिव्या अधिपतये, इदन्न मम ॥ ३ ॥ ओं वायुरन्तरिक्षस्याधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशि-ष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्याᳬ स्वाहा ॥ इदं वायवे, अन्त-रिक्षस्याधिपतये, इदन्न मम ॥ ४ ॥ ओं सूर्यो दिवोधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्याᳬ स्वाहा ॥ इदं सूर्याय दिवोऽधिपतये । इदन्न मम ॥ ५ ॥ ओं चन्द्रमा नक्ष-त्राणामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधा-यामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्याᳬ स्वाहा । इदं चन्द्रमसे नक्षत्राणामधिपतये, इदन्न मम॥६॥ओं बृहस्पतिर्ब्रह्मणोऽधिपतिः समावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽ-स्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्याᳬ स्वाहा । इदं बृहस्पतये ब्रह्मणोधिपतये, इदन्न मम॥७॥ ओं मित्रः सत्यानामधिपतिः स मावत्वस्मिन ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्याᳬ स्वाहा ॥ इदं मित्राय सत्यानामधिपतये, इदन्न मम ॥ ८ ॥ ओं वरुणोऽपा-मधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायाम-स्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्याᳬ स्वाहा इदं वरुणायापामधिपतये, इदन्न मम ॥ ९ ॥ ओं समुद्रः स्रोत्यानामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रे-

ऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्याᳫं स्वाहा । इदं समुद्राय स्रोत्यानामधिपतये, इदन्न मम ॥ १० ॥ ओं अन्नᳫं साम्राज्यानामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन्कर्मण्यस्यां देवहूत्याᳫं स्वाहा ॥ इदमन्नाय साम्राज्यानामधिपतये, इदन्न मम ॥ ११ ॥ ओं सोमऽओषधीनामाधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्याᳫं स्वाहा । इदं सोमाय, ओषधीनामधिपतयेः इदन्न मम ॥ १२ ॥ ओं सविता प्रसवानामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्याᳫं स्वाहा । इदं सवित्रे प्रसवानामधिपतये, इदन्न मम ॥ १३ ॥ ओं रुद्रः पशूनामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्याᳫं स्वाहा । इदं रुद्राय पशूनामधिपतये इदन्न मम ॥ १४ ॥ ओं त्वष्टा रूपाणामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्याᳫं स्वाहा । इदं त्वष्ट्रे रूपाणामधिपतये इदन्न मम ॥ १५ ॥ ओं विष्णुः पर्वतानामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्याᳫं स्वाहा । इदं विष्णवे पर्वतानामधिपतये इदन्न मम ॥ १६ ॥ ओं मरुतो गणानामधिपतयस्ते मावन्त्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्याᳫं स्वाहा इदं मरुद्भ्यो गणानामधिपतिभ्यः । इदन्न मम ॥ १७ ॥ ओं पितरः पितामहाः परेऽवरे ततास्ततामहाः इह मावन्त्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्याᳫं स्वाहा । इदं पितृभ्यः पितामहेभ्यः परेभ्योऽवरेभ्यस्ततेभ्यस्ततामहेभ्यश्च, इदन्न मम ॥ १८ ॥

इस प्रकार अभ्यातन होम की १८ अठारह आज्याहुति दिये पीछे पुनः

ओं अग्निरैतु प्रथमो देवतानाᳲ सोऽस्यै प्रजां मुञ्चतु मृत्युपाशात्। तदयᳫं राजा वरुणोऽनुमन्यतां यथेयᳫं स्त्रीपौत्रमघन्नरोदात् स्वाहा । इदमग्नये इदन्न मम ॥ १ ॥ ओं इमामग्निस्त्रायतां गार्हपत्यः प्रजामस्यै नयतु दीर्घमायुः। अशून्योपस्थीजावतामस्तु मातापौत्रमानन्दमभिविबुध्यतामियᳫं स्वाहा। इदमग्नये, इदन्न मम ॥ २ ॥ ओं स्वस्तिनोऽग्ने दिवा पृथिव्या विश्वानि धेह्ययथा यजत्र

यद्स्यां मयि दिवि जातं प्रशस्तं तदस्मासु द्रविणं धेहि चित्रᳪ स्वाहा ॥ इदमग्नये । इदन्न मम ॥ ३ ॥ ओं सुगन्नु पन्था प्रदिशन् न एहि ज्योतिष्मध्ये ह्यजरन्नऽ आयुः । ओंतु मृत्युरमृतं म आगाद्वैवस्वतोनोऽअभयं कृणोतु स्वाहा ॥ इदं वैवस्वताय । इदन्न मम ॥ ४ ॥ ओं परं मृत्योऽअनुपरे हि पन्थां यत्र नोऽअन्य इतरो देवयानात् । चक्षुष्मते शृण्वते ते ब्रवीमि मा नः प्रजाᳪ रीरिषो मोत वीरान्त्स्वाहा ॥ इदं मृत्यवे इदन्न मम ॥ ५ ॥ ओं द्यौस्ते पृष्ठᳪ रक्षतु वायुरूरू अश्विनौ च । स्तनन्धयस्ते पुत्रान्त्सविताभिरक्ष-त्वावाससः परिधाद्बृहस्पतिर्विश्वे देवा अभिरक्षन्तु पश्चात्स्वाहा । इदं वि-श्वेभ्यो देवेभ्यः । इदन्न मम ॥ ६ ॥ ओं मा ते गृहेषु निशि घोष उत्थाद-न्यत्रत्वद्रुदत्यः संविशन्तु मा त्वᳪ रुदत्युर आवधिष्ठा जीवपत्नी पतिलोके विराज पश्यन्ती प्रजाᳪ सुमनस्यमानाᳪ स्वाहा ॥ इदमग्नये । इदन्न मम ॥ ७ ॥ ओं अप्रजस्यं पौत्रमर्त्यपाप्मानमुत वा अघम् । शीर्ष्णस्स्रजमिवो-न्मुच्यद्विषद्भ्यः प्रतिमुञ्चामि पाशᳪ स्वाहा । इदमग्नये इदन्न मम ॥ ८ ॥

इन प्रत्येक मन्त्रों से एक २ आहुति करके आठ आज्याहुति दीजिये तत्पश्चात् २५ पृष्ट में लि० प्र०—

ओं भूरग्नये स्वाहा ॥

इत्यादि चार मन्त्रों से ४ चार आज्याहुति दीजिये ऐसे होम करके वर आसन से उठ पूर्वाभिमुख बैठी हुई वधू के सन्मुख पश्चिमाभिमुख खड़ा रह कर अपने वामहस्तसे वधू का दहना हाथ चत्ता धर के उपर को उचाना और अपने दक्षिण हाथ से वधू के उठाये हुए दक्षिण हस्ताञ्जलि अंगुष्ठा सहित चत्ती ग्रहण करके वर—

ओं गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जरदष्टिर्यथासः । भगो अर्यमा सविता पुरन्धिर्मह्यं त्वादुर्गार्हपत्याय देवाः*॥ १॥

* हें वरानने जैसे मैं (सौभगत्वाय) ऐश्वर्य सुसन्तानादि सौभाग्य की बढ़ती के लिये "तेरे" हस्तम्" हाथ को (गृभ्णामि) ग्रहण करता हूं तू (मया) मुझ (पत्या) पति के साथ (जरदष्टिः) जरावस्था को प्राप्त सुख पूर्वक (आसः) हो तथा हे वीर मैं सौभाग्य की वृद्धि के लिये आप के हस्त को ग्रहण करती हूं आप मुझ पत्नी के साथ वृद्धावस्था पर्यन्त प्रसन्न अनुकूल रहिये आप को मैं और मुझ को आप आज से पति पत्नी भाव करके प्राप्त हुए हैं (भगः) सकल ऐश्वर्ययुक्त

ओं भगस्ते हस्तमग्रभीत् सविता हस्तमग्रभीत् । पत्नी त्वमसि धर्मणाहं गृहपतिस्तव ॥ २ ॥ ममेयमस्तु पोष्या मह्यं त्वादाद् बृहस्पतिः । मया पत्या प्रजावति शं जीव शरदः शतम् * ॥ ३ ॥

त्वष्टा वासो व्यदधाच्छुभे कं बृहस्पतेः प्रशिषा कवीनाम् । तेनेमां नारीं

(अर्यमा) न्यायकारी (सविता) सब जगत की उत्पति का कर्त्ता (पुरन्धियः) बहुत प्रकार के जगत् का धर्ता परमात्मा और (देवाः) ये सब सभामण्डप में बैठे हुए विद्वान् लोग (गार्हपत्याय) गृहाश्रमकर्म के अनुष्ठान के लिये (त्वा) तुझ को (मह्यम्) मुझे (अदुः) देते हैं आज से मैं आप के हस्ते और आप मेरे हाथ बिक चुके हैं कभी एक दूसरे का अप्रियाचरण न करेंगे ॥

ꙮ हे प्रिये " भगः " ऐश्वर्ययुक्त मैं " ते " " तेरे " " हस्तम् " हाथ को "अग्रभीत्" ग्रहण करता हूं तथा "सविता " धर्मयुक्त मार्ग में प्रेरक मैं तेरे " हस्तम् " हाथ को (अग्रभीत्) ग्रहण कर चुका हूं " त्वम् " तू " धर्मणा " धर्म से मेरी पत्नी भार्या " असि " है और " अहम् " मैं धर्म से "तव" तेरा " गृहपतिः " गृहपति हूं अपने दोनों मिल के घर के कामों की सिद्धि करें और जो दोनों का अप्रियाचरण व्यभिचार है उस को कभी न करें जिस से घर के सब काम सिद्ध उत्तम सन्तान ऐश्वर्य और सुख की बढ़ती सदा होती रहे ॥

* हे अनघे (बृहस्पतिः) सब जगत् को पालन करने हारे परमात्मा ने जिस (त्वा) तुझ को (मह्यम्) मुझे (अदात्) दिया है (इयम्) यही तू जगत् भर में मेरी (पोष्या) पोषण करने योग्य पत्नी (अस्तु) हो हे (प्रजावति,) तू (मया, पत्या) मुझ पति के साथ (शतम्) सौ (शरदः) शरद् ऋतु अर्थात् शत वर्ष पर्यन्त (शं, जीव) सुखपूर्वक जीवन धारण कर । वैसे ही वधू भी वर से प्रतिज्ञा करावे । हे भद्र वीर परमेश्वर की कृपा से आप मुझे प्राप्त हुए हो मेरे लिये आप के बिना इस जगत् में दूसरा पति अर्थात् स्वामी पालन करने हारा सेव्य इष्टदेव कोई नहीं है न मैं आप से अन्य दूसरे किसी को मानूंगी जैसे आप मेरे सिवाय दूसरी किसी स्त्री से प्रीति न करोगे वैसे मैं भी किसी दूसरे पुरुष के साथ प्रीतिभाव से न वर्त्ता करूंगी आप मेरे साथ सौ वर्ष पर्यन्त आनन्द से प्राण धारण कीजिये ॥

सविता भगश्च सूर्यामिव परिधत्तां प्रजया * ॥ ४ ॥ इन्द्राग्नीद्यावापृथिवी मातरिश्वा मित्रावरुणा भगो अश्विनोभा । बृहस्पतिर्मरुतो ब्रह्म सोम इमां नारीं प्रजया वर्धयन्तु † ॥ ५ ॥ अहं विष्यामि मयि रूपमस्या वेददित्पश्य-

* हे शुभानने जैसे (बृहस्पतेः) इस परमात्मा की सृष्टि में और उस की तथा (कवीनाम्) आप्त विद्वानों की (प्रशिषा) शिक्षा से दंपती होते हैं (त्वष्टा) जैसे बिजली सब को व्याप्त हो रही है वैसे तू मेरी प्रसन्नता के लिये (वासः) सुन्दर वस्त्र (शुभे) और आभूषण तथा (कम्) मुझ से सुख को प्राप्त हो, इस मेरी और तेरी इच्छा को परमात्मा (व्यदधात्) सिद्ध करे जैसे (सविता) सकल जगत् की उत्पत्ति करने हारा परमात्मा (च) और (भगः) पूर्ण ऐश्वर्ययुक्त (प्रजया) उत्तम प्रजा से (इमाम्) इस तुझ (नारीम्) तुझ नर की स्त्री (परिधत्ताम्) आच्छादित शोभायुक्त करे वैसे मैं (तेन) इस सत्र से (सूर्यामिव) सूर्य की किरण के समान तुझ को वस्त्र और भूषणादि से सुशोभित सदा रक्खूंगा तथा हे प्रिय आप को मैं इसी प्रकार सूर्य के समान सुशोभित आनन्द अनुकूल प्रियाचरण कर के (प्रजया) ऐश्वर्य वस्त्राभूषण आदि से सदा आनन्दित रक्खूं गी ॥

† हे मेरे सम्बन्धी लोगो जैसे (इन्द्राग्नी) बिजुली और प्रसिद्ध अग्नि (द्यावापृथिवी) सूर्य और भूमि (मातरिश्वा) अन्तरिक्षस्थ वायु (मित्रावरुणा) प्राण और उदान तथा (भगः) ऐश्वर्य (अश्विना) सद्वैद्य और सत्योपदेशक (उभा) दोनों (बृहस्पतिः) श्रेष्ठ न्यायकारी बड़ी प्रजा का पालन करने हारा राजा (मरुतः) सभ्य मनुष्य (ब्रह्म) सब से बड़ा परमात्मा और (सोमः) चन्द्रमा तथा सोमलतादि ओषधी गण सब प्रजा की वृद्धि और पालन करते हैं वैसे (इमां, नारीम्) इस मेरी स्त्री को (प्रजया) प्रजा से बढ़ाया करते हैं वैसे तुम भी (वर्धयन्तु) करो जैसे मैं इस स्त्री को प्रजा आदि से सदा बढ़ाया करूंगा वैसे स्त्री भी प्रतिज्ञा करे कि मैं भी इस मेरे पति को सदा आनन्द ऐश्वर्य और प्रजा से बढ़ाया करूंगी जैसे ये दोनों मिल के प्रजा को बढ़ाया करते हैं वैसे तू और मैं मिल के गृहाश्रम के अभ्युदय को बढ़ाया करें ॥

न्मनसा कुलायम् न स्तेयमद्भि मनसोदमुच्ये स्वयं श्रन्थानो वरुणस्य पाशान् † ॥ ६ ॥

इन पाणिग्रहण के छः मन्त्रों को बोल के पश्चात् वर वधू की हस्तांजली पकड़ के उठावे और उस को साथ ले के जो कुंड की दक्षिण दिशा में प्रथम स्थापन किया था उस को वही पुरुष जो कलश के पास बैठा था वर वधू के साथ २ उसी कलश को ले-चले यज्ञकुंड की दोनों प्रदक्षिणा करके—

ओं अमोऽहमस्मि सा त्वꣳ सा त्वमस्यमोऽहं सामाहमस्मि ऋक्त्वं द्यौरहं पृथिवी त्वं तावेव विवहावहै सह रेतो दधावहै। प्रजां प्रजनयावहै पुत्रान् विन्दावहै बहून्। ते सन्तु जरदष्टयः सं प्रियौ रोचिष्णू सुमनस्यमानौ। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ शृणुयाम शरदः शतम् * ॥ १७ ॥

---

† हे कल्याणक्रीड़े जैसे (मनसा) मन से (कुलायम्) कुल की वृद्धि को (पश्यन्) देखता हुआ (अहम्) मैं (अस्याः) इस तेरे (रूपम्) रूप को (विष्यामि) प्रीति से प्राप्त और इस में प्रेमद्वारा व्याप्त होता हू वैसे यह तू मेरी वधू (मयि) मुझ में प्रेम से व्याप्त हो के अनुकूल व्यवहार को (वेदत्) प्राप्त होवे जैसे मैं (मनसा) मन से भी इस तुझ वधू के साथ (स्तेयम्) चोरी को (उदमुच्ये) छोड़ देत हूं और किसी उत्तम पदार्थ का चोरी से (नाद्मि) भोग नहीं करता हूं (स्वयम्) आप (श्रन्थानः) पुरुषार्थ से शिथिल हो कर भी (वरुणस्य) उत्कृष्ट व्यवहार में विघ्नरूप दुर्व्यसनी पुरुष के (पाशान्) बन्धनों को दूर करता हूं वैसे (इत्) ही यह वधू भी किया करे इसी प्रकार वधू भी स्वीकार करे कि मैं भी इसी प्रकार आप से वर्ता करूंगी ॥

* हे वधू जैसे (अहम्) मैं (अमः) ज्ञानवान् ज्ञान पूर्वक तेरा ग्रहण करने वाला (अस्मि) होता हूं वैसे (सा) सो (त्वम्) तू भी ज्ञान पूर्वक मेरा ग्रहण करने हारी (असि) है जैसे (अहम्) मैं अपने पूर्ण प्रेम से तुझ को (अमः) ग्रहण करता हूं वैसे (सा) सो मैंने ग्रहण की हुई (त्वम्) तू मुझ को भी ग्रहण करती है (अहम् मैं (साम) सामवेद के तुल्य प्रशंसित (अस्मि) हूं हे वधू तू (ऋक्) ऋग्वेद के तुल्य प्रशंसित है (त्वम्) तू (पृथिवी) पृथिवी के समान गर्भादि गृहाश्रम के व्यवहारों को धारण करने हारी है और मैं (द्यौः) वर्षा करने हारे सूर्य के समान हूं वह तू और मैं (तावेव) दोनों ही (विवहावहै) प्रसन्नता पूर्वक विवाह करें (सह) साथ मिल के (रेतः) वीर्य को (दधावहै) धारण करें (प्रजाम्) उत्तम प्रजा को (प्रजनयावहै) उत्पन्न करें (बहून्) बहुत (पुत्रान्) पुत्रों को (विन्दावहै) प्राप्त होवें (ते) वे पुत्र (जरदष्टयः) जरावस्था के अन्त तक जीवन युक्त (सन्तु) रहें

इन प्रतिज्ञा मन्त्रों से दोनों प्रतिज्ञा करके पश्चात् वर बधू के पीछे रह के वधू के दक्षिण ओर समीप में जा उत्तराभिमुख खड़ा रह के वधू की दक्षिणांजली अपनी दक्षिणांजली से पकड़ के दोनों खड़े रहें और वह पुरुष पुनः कुण्ड के दक्षिण में कलश ले के बैठे वैसे तत्पश्चात् वधू की माता अथवा भाई जो प्रथम चावल और ज्वार की धाणी सूप में रक्खी थी उस को बायें हांथ में लेके दहिने हाथ से वधू का दक्षिण पग उठवा के पत्थर की शिला पर चढ़वाये और इस समय वर—

ओं आरोहेममश्मानमश्मेव त्वᳪं स्थिरा भव । अभितिष्ठ पृतन्यतोऽवबाधस्व पृतनायतः ॥ १ ॥

इस मन्त्र को बोले तत्पश्चात् बधू वर कुण्ड के समीप आ के पूर्वाभिमुख दोनों खड़े रहें और यहां वधू दक्षिण ओर रह के अपनी हस्ताञ्जली को वर की हस्ताञ्जली पर रक्खे तत्पश्चात् वधू की मा वा भाई जो बायें हाथ में धाणी का सूप पकड़ के खड़ा रहा हो वह धाणी का सूप भूमि पर धर अथवा किसी के हाथ में देके जो बधू वर की एकत्र की हुई अर्थात् नीचे वर की और ऊपर वधू की हस्ताञ्जली है उस में प्रथम थोड़ा घृत सिंचन करके तत्पश्चात् प्रथम सूप में से दहिने हाथ की अञ्जली से दो वार ले के वर वधू की एकत्र की हुई अञ्जली में धाणी डाले पश्चात् उस अञ्जलीस्थ धाणी पर थोड़ा सा घी सिंचन करे पश्चात् वधू वर की हस्ताञ्जली सहित अपनी हस्ताञ्जली को आगे से नमा के—

ओं अर्यमणं देवं कन्या अग्निमयक्षत । स नोऽअर्यमा देवः प्रेतो मुञ्चतु मा पतेः स्वाहा । इदमर्यम्णे, अग्नये । इदन्न मम ॥ १ ॥ ओं इयं नार्युपब्रूते लाजानावपन्तिका । आयुष्मानस्तु मे पतिरेधन्तां ज्ञातयो मम स्वाहा । इदमग्नये, इदन्न मम ॥ २ ॥ ओं इमाँल्लाजानावपाम्यग्नौ समृद्धिकरणं तव मम-तुभ्यं च संवदनं तदग्निरनुमन्यतामियᳪंस्वाहा । इदमग्नये, इदन्न मम ॥ ३ ॥

इन तीन मन्त्रों में एक २ मन्त्र से एक २ वार थोड़ी २ धाणी की आहुति तीन वार प्रज्वलित इन्धन पर दे के वर—

(संप्रियौ) अच्छे प्रकार एक दूसरे से प्रसन्न (रोचिष्णू) दूसरे में रुचियुक्त एक (सुमनस्यमानौ) अच्छे प्रकार विचार करते हुए (शतम्) सौ (शरदः) शरद् ऋतु अर्थात् शत वर्ष पर्यन्त एक दूसरे को प्रेम की दृष्टि से (पश्येम) देखते रहें (शतं, शरदः) सौ वर्ष पर्यन्त आनन्द से (जीवेम) जीते रहें और (शतं, शरदः) सौ वर्ष पर्यन्त प्रिय वचनों को (शृणुयाम) सुनते रहें ॥

ओं सरस्वति प्रेदमव सुभगे वाजिनीवति । यान्त्वा विश्वस्य भूतस्य प्रजायामस्याग्रतः । यस्यां भूतꣳसमभवद्यस्यां विश्वमिदं जगत् । तामद्य गाथां गास्यामि या स्त्रीणामुत्तमं यशः ॥ १ ॥

इस मन्त्र को बोल के अपने जमणे हाथ की हस्ताञ्जलि से वधू की हस्ताञ्जलि पकड़ के वर—

ओं तुभ्यमग्ने पर्यवहन्त्सूर्यां वहतुना सह पुनः पतिभ्यो जायां दाग्ने प्रजया सह ॥ १ ॥ ओं कन्यला पितृभ्यः पति लोकं पतीयमपदीक्षामयष्ट । कन्या उत त्वया वयं धारा उदन्या इवाति गाहे महिद्विषः ॥ २ ॥

इन मन्त्रों को पढ़ यज्ञकुण्ड की प्रदक्षिणा करके यज्ञकुण्ड के पश्चिम भाग में पूर्व की ओर मुख करके थोड़ी देर दोनों खड़े रहें–तत्पश्चात् पूर्वोक्त प्रकार कलश सहित यज्ञकुण्ड की प्रदक्षिणा कर पुनः दोबार इसी प्रकार अर्थात् सब मिल के ४ चार परिक्रमा करके अन्त में यज्ञकुण्ड के पश्चिम में थोड़ा ठड़े रह के उक्त रीति से तीन वार क्रिया पूरी हुए पश्चात् यज्ञकुण्ड के पश्चिम भाग में पूर्वाभिमुख वधू वर खड़े रहें पश्चात् वधू की मा अथवा भाई उस सूप को तिरछा करके उस में बाकी रही हुई धाणी को वधू की हस्ताञ्जली में डाल देवे पश्चात् वधू—

ओं भगाय स्वाहा । इदं भगाय । इदन्न मम ॥

इस मन्त्र को बोल के प्रज्वलित अग्नि पर वेदी में उस धाणी की एक आहुति देवे पश्चात् वर वधू को दक्षिण भाग में रख के कुण्ड के पश्चिम पूर्वाभिमुख बैठ के:–

ओं प्रजापतये स्वाहा । इदं प्रजापतये, इदन्न मम ॥

इस मन्त्र को बोल के स्रुवा से एक घृत की आहुति देवे तत्पश्चात् एकान्त में जा के वधू के बंधे हुए केशों को वर—

प्र त्वा मुञ्चामि वरुणस्य पाशाद्येनस्त्वा बध्नात्सविता सुशेवः । ऋतस्य योनौ सुकृतस्य लोकेऽरिष्टन्त्वा सह पत्यादधामि ॥ १ ॥ प्रेतो मुञ्चामि नामतस्सुबद्धाममुतस्करम् । यथेमिन्द्र मीढ्वः सुपुत्रा सुभगा सती ॥ २ ॥

इन दोनों मन्त्रों को बोल के प्रथम वधू के केशों को छोड़ना तत्पश्चात् सभामण्डप में आ के सप्तपदी विधि का आरम्भ करे इस समय वर के उपवस्त्र के साथ वधू के उत्तरीय वस्त्र की गांठ देनी उसे जोड़ा कहते हैं वधू वर दोनों जने आसन पर से उठ के वर अपने दक्षिण हाथ से वधू की दक्षिण हस्ताञ्जली पकड़ के यज्ञकुण्ड के उत्तर भाग में जावें तत्पश्चात् वर अपना दक्षिण हाथ वधू के दक्षिण स्कन्धे पर रख के दोनों समीप २ उत्तराभिमुख खड़े रहें तत्पश्चात् वर—

मासञ्येन दक्षिणमतिक्राम ।

ऐसा बोल के वधू को उस का दक्षिण पग उठवा के चलने के लिये आज्ञा देनी और--

ओं इष एकपदी भव सा मामनुव्रता भव विष्णुस्त्वानयतु पुत्रान् विन्दावहै बहूँस्ते सन्तु जरदष्टयः ॥ १ ॥

इस मन्त्र को बोल के वर अपने साथ वधू को ले कर ईशान दिशा में एक पग* चले और चलावे ।

ओं ऊर्ज्जे द्विपदी भव० † ॥

इस मन्त्र से दूसरा॥

ओं रायस्पोषाय त्रिपदी भव०

इस मन्त्र से तीसरा ॥

ओं मयोभवाय चतुष्पदी भव०

इस मन्त्र से चौथा ॥

ओं प्रजाभ्यः पञ्चपदी भव०

इस मन्त्र से पांचवां ॥

ओं ऋतुभ्यः षट्पदी भव०

इस मन्त्र से छठा और

ओं सखे सप्तपदी भव०

इस मन्त्र से सातवां पग चलना इस रीति से इन सात मन्त्रों से सात पग ईशान दिशा में चला के वधू वर दोनों गांठ बन्धे हुए शुभासन पर बैठें तत्पश्चात् प्रथम से जो जल के कलश को ले के यज्ञकुंड की दक्षिण की ओर में बैठाया था वह पुरुष उस पूर्वस्थापित जलकुम्भ को ले के वधू वर के समीप आवे और उस में से थोड़ासा जल ले के वधू वर के मस्तक पर छिड़कावे और वर—

* इस पग धरने की विधि ऐसी है कि वधू प्रथम अपना जमणा पग उठा के ईशान कोण की ओर बढ़ा के धरे तत्पश्चात् दूसरे बायें पग को उठा के जमणे पग की पटली तक धरे अर्थात् जमणे पग के थोड़ा सा पीछे बायां पग रक्खे इसी को एक पग गिनना इसी प्रकार अगले छः मन्त्रों से भी क्रिया करनी अर्थात् एक २ मन्त्र से २ एक पग ईशान दिशा की ओर धरना॥

† जो भव के आगे मन्त्र में पाठ है सो छः मन्त्रों के इस भव पद के आगे पूरा बोल के पग धरने की क्रिया करनी ॥

ओं आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्ज्जे दधातन । महेरणाय चक्षसे ॥१॥ यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः । उशतीरिव मातरः ॥ २ ॥ तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ । आपो जनयथा च नः ॥ ३ ॥ ओं आपः शिवाः शिवतमाः शान्ताः शान्ततमास्तास्ते कृण्वन्तु भेषजम् ॥४॥

इन चार मन्त्रों को बोले तत्पश्चात् वधू वर वहां से उठ के—

ओं तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् । पश्येमशरदः शतं जीवेम शरदः शतᳪ शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ॥ १ ॥

इस मन्त्रों को पढ़ के सूर्य का अवलोकन करें तत्पश्चात् वधू के दक्षिण स्कन्धे पर से अपना दक्षिण हाथ ले के उस से वधू का हृदय स्पर्श करके—

ओं मम व्रते ते हृदयं दधामि मम चित्तमनु चित्तं ते अस्तु । मम वाचमेकमना जुषस्व प्रजापतिष्ट्वा नियुनक्तु मह्यम् * ॥

इस मन्त्र को बोले और उसी प्रकार वधू भी अपने दक्षिण हाथ से वर के हृदय का स्पर्श करके इसी ऊपर लिखे हुए मन्त्र को बोले † ॥

तत्पश्चात् वर वधू के मस्तक पर हाथ धर के:—

सुमङ्गलीरियं वधूरिमां समेत पश्यत । सौभाग्यमस्यै दत्वा याथास्तं विपरेतन ॥

---

* हे वधू [ते] तेरे [हृदय] अन्तःकरण और आत्मा को [मम] मेरे [व्रते] कर्म के अनुकूल [दधामि] धारण करता हूं [मम] मेरे [चित्तमनु] चित्त के अनुकूल [ते] तेरा [चित्तम्] चित्त सदा [अस्तु] रहे [मम] मेरी [वाचम्] वाणी को तू [एकमनाः] एकाग्र चित्त से [जुषस्व] सेवन किया कर [प्रजापतिः] प्रजा का पालन करने वाला परमात्मा [त्वा] तुझ को [मह्यम्] मेरे लिये [नियुनक्तु] नियुक्त करे ॥

† वैसे ही हे प्रिय वीर स्वामिन् आप का हृदय आत्मा और अन्तःकरण मेरे प्रियाचरण कर्म मैं धारण करती हूं मेरे चित्त के अनुकूल आप का चित्त सदा रहे आप एकाग्र हो के मेरी वाणी का जो कुछ मैं आप से कहूं उस का सेवन सदा किया कीजिये क्योंकि आज से प्रजापति परमात्मा ने आप को मेरे आधीन किया है जैसे मुझ को आप के आधीन किया है अर्थात् इस प्रतिज्ञा के अनुकूल दोनों वर्त्ता करें जिस से सर्वदा आनन्दित और कीर्त्तिमान् पतिव्रता और स्त्रीव्रत होके सब प्रकार के व्यभिचार अप्रियभाषणआदि को छोड़ के परस्पर प्रीतियुक्त रहें ॥

इस मन्त्र को बोल के कार्यार्थ आये हुए लोगों की ओर अवलोकन करना और इस समय सब लोग ॥

ओं सौभाग्यमस्तु । ओं शुभं भवतु ॥

इस वाक्य से आशीर्वाद देवें तत्पश्चात् वधू वर यज्ञकुण्ड के समीप पूर्ववत् बैठ के पुनः पृष्ठ २७ में लिखे प्रमाणे दोनों (ओं यदस्य कर्मणो०) इस स्विष्टकृत् मन्त्र से होमाहुति अर्थात् एक आज्याहुति और पृष्ठ २७ में लिखे ।

ओं भूरग्नये स्वाहा ॥

इत्यादि चार मन्त्रों से एक २ आहुति कर के ४ चार आज्याहुति देवें और इस प्रमाणे विवाह के विधि पूरे हुए पश्चात् दोनों जने आराम अर्थात् विश्राम करें इस रीति से थोड़ासा विश्राम कर के विवाह का उत्तर विधि करे । यह उत्तरविधि सब वधू के घर की ईशान दिशा में विशेष करके एक घर प्रथम से बना रक्खा हो वहां जाके करनी तत्पश्चात् सूर्य अस्त हुए पीछे आकाश में नक्षत्र दीखें उस समय वधू वर यज्ञकुण्ड के पश्चिम भाग में पूर्वाभिमुख आसन पर बैठें और पृष्ठ २५ में लि० अग्न्याधान (ओं भूर्भुवः स्वर्द्यौ०) इस मन्त्र से करें यदि प्रथम ही सभामण्डप ईशान दिशा में हुआ और अग्न्याधान किया हो तो अग्न्याधान न करे (ओं अयन्त इध्म०) इत्यादि ४ चार मन्त्रों से समिदाधान कर के जब अग्नि प्रदीप्त होवे तब पृ० २७ में लिखे प्रमाणे—

ओं अग्नये स्वाहा ॥

इत्यादि ४ चार मन्त्रों से आघारावाज्यभागाहुति ४ चार और उसी पृष्ठ में लिखे प्रमाणे—

ओं भूरग्नये स्वाहा ॥

इत्यादि ४ चार मन्त्रों से ४ चार व्याहृति आहुति ये सब मिल के ८ आठ आज्याहुति देवें तत्पश्चात् प्रधान होम करें निम्नलिखित मन्त्रों से—

ओं लेखा सन्धिषु पक्ष्मस्वावर्तेषु च यानि ते । तानि ते पूर्णाहुत्या सर्वाणि शमयाम्यहं स्वाहा—इदं कन्यायै, इदन्न मम ॥ ओं केशेषु यच्च पापक पापकं मिक्षिते रुदिते च यत् । तानि० ॥ ओं शीलेषु यच्च पापकं भाषिते हसिते च यत् । तानि० ॥ ओं आरोकेषु दन्तेषु हस्तयोः पादयोश्च यत् तानि० ॥ ओं ऊर्वोपस्थे जङ्घयोः सन्धानेषु च यानि ते । तानि० ॥ ओं यानि कानि च घोराणि सर्वाङ्गेषु तवाभवन् । पुर्णाहुतिभिराज्यस्य सर्वाणि तान्यशीशमं स्वाहा इदं कन्यायै, इदन्न मम ॥

ये छः मन्त्र हैं इन में से एक २ मन्त्र बोल एक २ से छः आज्याहुति देनी तत्पश्चात् पृ० २७ में लिखे०—

ओं भूरग्नये स्वाहा ॥

इत्यादि ४ चार व्याहृति मन्त्रों से ४ चार आज्याहुति दे के वधू वर वहां से उठ के सभामण्डप के बाहर उत्तर दिशा में जावें तत्पश्चात् वर–

ध्रुवं पश्य

ऐसा बोल के वधू को ध्रुव का तारा दिखलावे † और वधू वर से बोले कि मैं

पश्यामि

ध्रुव के तारे को देखती हूं तत्पश्चात् वधू बोले—

ओं ध्रुवमसि ध्रुवाहं पतिकुले भूयासम् (अमुष्य × असौ)

इस मन्त्र को बोल के तत्पश्चात्—

अरुन्धतीं पश्य ॥

ऐसा वाक्य बोल के वर वधू को अरुन्धती का तारा दिखलावे और वधू–

पश्यामि ॥

ऐसा कह के–

ओं अरुन्धत्यसि रुद्धाहमस्मि (अमुष्य‡असौ)

इस मन्त्र को बोल के वर वधू की ओर देख के वधू के मस्तक पर हाथ धर के

ओं ध्रुवा द्यौर्ध्रुवा पृथिवी ध्रुवं विश्वमिदं जगत् । ध्रुवासः पर्वता इमे ध्रुवा स्त्री पतिकुले इयम् *॥

---

† हे वधू वा वर जैसे यह ध्रुव दृढ़ स्थिर है इसी प्रकार आप और मैं एक दूसरे के प्रियाचरणों में दृढ़ स्थिर रहें ॥

× (अमुष्य) इस पद के स्थान में षष्ठी विभक्त्यन्त पति का नाम बोलना जैसे शिवशर्म्मा पति का नाम हो तो " शिवशर्म्मणः " ऐसा और (असौ) इस पद के स्थान में वधू अपने नाम को प्रथमा विभक्त्यन्त बोल के इस मन्त्र को पूरा बोले जैसे " भूयासं सौभाग्यदाहं शिवशर्म्मणस्ते " इस प्रकार दोनों पद जोड़ के बोले ॥

‡ (अमुष्य) इस पद के स्थान में पति का नाम षष्ठ्यन्त और (असौ) इस के स्थान में वधू का प्रथमान्त नाम जोड़ कर बोले हे स्वामिन् सौभाग्यदा (अहम्) मैं (अमुष्य) आप शिवशर्म्मा की अर्धाङ्गी (पतिकुले) आप के कुल में (ध्रुवा) निश्चल जैसे कि आप (ध्रुवम्) दृढ़ निश्चय वाले मेरे स्थिर पति (असि) हैं वैसे मैं भी आप की स्थिर दृढ़ पत्नी (भूयासम्) होऊं ॥

* हे वरानने जैसे (द्यौः) सूर्य की कान्ति वा विद्युत् (ध्रुवा) सूर्य लोक वा पृथिव्यादि में निश्चल जैसे (पृथिवी) भूमि अपने स्वरूप में (ध्रुवा) स्थिर जैसे (इदम्) यह (विश्वम्) सब (जगत्) संसार प्रवाह स्वरूप में (ध्रुवम्) स्थिर है जैसे

ओं ध्रुवमसि ध्रुवन्त्वा पश्यामि ध्रुवैधि पोष्ये मयि मह्यं त्वादात्। बृहस्पतिर्मया पत्या प्रजावती सं जीव शरदः शतम् † ॥

इन दोनों मन्त्रों को बोले पश्चात् वधू और वर दोनों यज्ञकुण्ड के पश्चिम भाग में पूर्वाभिमुख हो के कुण्ड के समीप बैठें और पृ० १७ में लिखे०

ओं अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा ॥

इत्यादि तीन मन्त्रों से एक २ से एक २ आचमन करके तीन२ आचमन दोनों करें पश्चात् पृष्ठ २५ में लिखी हुई समिधाओं से यज्ञकुण्ड में अग्नि को प्रदीप्त करके पृष्ठ १२ में लिखे० घृत और स्थालीपाक अर्थात् भात को उसी समय बनावें पृष्ठ २५ में लिखे० प्रमाणे " ओम् अयन्त इध्म० " इत्यादि चार मन्त्रों से समिधा होम दोनों जने करके पश्चात् पृष्ठ २७ में लिखे प्रमाणे आधारावाज्यभागाहुति ४ चार और उसी पृष्ठ में लिखे प्रमाणे व्याहृति आहुति चार दोनों मिल के ८ आठ आज्याहुति वर वधू देवें तत्पश्चात् जो ऊपर सिद्ध किया हुआ ओदन अर्थात् भात उस को एक पात्र में निकाल के उस के ऊपर स्रुवा से घृत सेचन करके घृत और भात को अच्छे प्रकार मिला कर दक्षिण हाथ से थोड़ा २ भात दोनों जने ले के—

ओं अग्नये स्वाहा । इदमग्नये, इदन्न मम । ओं प्रजापतये स्वाहा । इदं प्रजापतये, इदन्न मम । ओं विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा । इदं विश्वेभ्यो देवेभ्यः, इदन्न मम । ओम् अनुमतये स्वाहा । इदमनुमतये, इदन्न मम ॥

इन में से प्रत्येक मन्त्र से एक २ करके ४ चार स्थालीपाक अर्थात् भात की

(इमे) ये प्रत्यक्ष (पर्वताः) पहाड़ (ध्रुवासः) अपनी स्थिति में स्थिर हैं वैसे (इयम्) यह तू मेरी (स्त्री) (पतिकुले) मेरे कुल में (ध्रुवा) सदा स्थिर रहे ॥

† हे स्वामिन् जैसे आप मेरे समीप (ध्रुवम्) दृढ़ सङ्कल्प करके स्थिर (असि) हैं या जैसे मैं (त्वा) आप को (ध्रुवम्) स्थिर दृढ़ (पश्यामि) देखती हूं वैसे ही सदा के लिये मेरे साथ आप दृढ़ रहिये गा क्योंकि मेरे मन के अनुकूल (त्वा) आप को (बृहस्पतिः) परमात्मा (अदात्) समर्पित कर चुका है वैसे मुझ पत्नी के साथ उत्तम प्रजायुक्त हो के (शत, शरदः) सौ वर्ष पर्यन्त (सम्, जीव) जीविये तथा हे वरानने पत्नी (पोष्ये) धारण और पालन करने योग्य (मयि) मुझ पति के निकट (ध्रुवा) स्थिर (एधि) रह (मह्यम्) मुझ को अपनी इच्छा के अनुकूल तुझे परमात्माने दिया है तू (मया) मुझ (पत्या) पति के साथ (प्रजावती) बहुत उत्तम प्रजायुक्त हो कर सौ वर्ष पर्यन्त आनन्दपूर्वक जीवन धारण कर । वधू वर ऐसी दृढ़ प्रतिज्ञा करें कि जिस से कभी उलटे विरोध में न चलें ॥

आहुति देनी तत्पश्चात् पृष्ठ २७ में लि० (ओंयदस्य कर्मणो०) इस मन्त्र से १ एक स्विष्टकृत् आहुति देनी तत्पश्चात् उसी पृष्ठ में लिखे प्रमाणे व्याहृति आहुति ४ चार और पृष्ठ २८ में लि० अष्टाज्याहुति ८ आठ दोनों मिल के १२ बारह आज्याहुति देनी पुनः निम्नलिखित मन्त्र से पूर्णाहुति करे स्रुवा को घृत से भर के—

ओं सर्वं वै पूर्णꣳस्वाहा ।

इस मन्त्र से एक आहुति देवे ऐसे दूसरी और तीसरी आहुति दे तत्पश्चात् शेष रहा हुआ भात एक पात्र में निकाल के उस पर घृत सेचन और दक्षिण हाथ रख के

ओं अन्नपाशेन मणिना प्राणसूत्रेण पृश्निना । बध्नामि सत्यग्रन्थिना मनश्च हृदयं च ते + ॥ १ ॥ ओं यदेतद्धृदयं तव तदस्तु हृदयं मम यदिदꣳ हृदयं मम तदस्तु हृदयं तव ✣ ॥ २ ॥ ओं अन्नं प्राणस्य षड्विꣳशस्तेन बध्नामि त्वा असौ ✻ ॥ ३ ॥

इन तीनों मन्त्रों को मन से जप के वर उस भात में से प्रथम थोड़ासा भक्षण करके जो उच्छिष्ट शेष भात रहे वह अपनी वधू के लिये खाने को देवे और जब वधू उस को खा चुके तब वधू वर यज्ञमण्डप में संनद्ध हुए शुभासन पर नियम प्रमाणे पूर्वाभिमुख बैठें और नीचे लिखे प्रमाणे सामवेदोक्त महावामदेव्यगान करें:—

ओं भूर्भुवः स्वः । कया नश्चित्र आभुवदूती सदावृधः सखा । कया शचिष्ठया वृता ॥ १ ॥ ओं भूर्भुवः स्वः । कस्त्वा सत्यामदानां मꣳहिष्ठो मत्सदन्धसः । दृढा चिदारुज वसु ॥ २ ॥ ओं भूर्भुवः स्वः । अभीषुणः सखीनामविता जरितॄणाम् । शतम्भवास्यूतये ॥ ३ ॥ महावामदेव्यम् ॥ काऽ५या ।

+ हे वधू वा वर जैसे अन्न के साथ प्राण प्राण के साथ अन्न तथा अन्न और प्राण का अन्तरिक्ष के साथ सम्बन्ध है वैसे (ते) तेरे (हृदयम्) हृदय (च) और (मनः) मन (च) और चित्त आदि को (सत्य ग्रन्थिना) सत्यता की गांठ से (बध्नामि) बांधती वा बांधता हूं ॥

✣ हे वर हे स्वामिन् वा हे पत्नी [यदेतत्] जो यह [तव] तेरा [हृदयम्] आत्मा वा अन्तःकरण है [तत्] वह [मम] मेरा [हृदयम्] आत्मा अन्तःकरण के तुल्य प्रिय [अस्तु] हो, और [मम] मेरा [यदिदम्] जो यह [हृदयम्] आत्मा प्राण और मन है [तत्] सो [तव] तेरे [हृदयम्] आत्मादि के तुल्य प्रिय [अस्तु] सदा रहे ॥

✻ [असौ] हे यशोदे जो [प्राणस्य] प्राण का पोषण करने हारा [षड्विंशः] २६ छब्बीसवां तत्व [अन्नम्] अन्न है तेन उस से [त्वा] तुझ को [बध्नामि] दृढ़ प्रीति से बांधता वा बांधती हूं ॥

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नश्चा३ इन्ना३आभुवात् । ऊ । ती सदावृधः सखा । औ३ होहाइ । कया २३ शचाई । ष्ठयौहो३हुम्मा २ । वा२र्तो३ऽ५हाइ ॥ (१) ॥ काऽ५स्त्वा । स-त्यो३मा३दानाम् । मा । हिष्ठोमात्सादन्ध । सा । औ३होहाइ दढा २३ चिदा । रुजौहो३ । हुम्मा२ वाऽ३सो३ऽ५हायि ॥ (२) आऽ५भी । षुणा३:सा३खी-नाम् । आ विता जरायितॄ । णाम् । औ २३हो हायि । शता २३ भवा । सियौहो ३ । हुम्मा २ । ताऽ २ यो ३ ऽ ५ हायि ॥ (३) ॥ साम० उत्तरा-र्चिके । अध्याये १ । खं० ३ । मं० १ । २ । ३ ॥

तत्पश्चात् पृष्ठ १८—२५ में लिखे प्रमाणे ईश्वर की स्तुति,प्रार्थनोपासना,स्वस्तिवाचन, शान्तिकरण कम करके क्षार लवण रहित मिष्ट दुग्धघृतादि सहित भोजन करें तत्पश्चात् पुरोहितादि सद्धर्मी और कार्यार्थ इकट्ठे हुए लोगों को सन्मानार्थ उत्तम भोजन कराना तत्पश्चात्यथायोग्य पुरुषों का पुरुष और स्त्रियों का स्त्री आदर सत्कार करके बिदा कर देवें तत्पश्चात् दश घटिका रात्रि जाय तब वधू और वर पृथक् २ स्थानमें भूमि में बिछोना करके तीन रात्रि पर्यन्त ब्रह्मचर्य व्रत सहित रह कर शयन करें और ऐसा भोजन करें कि स्वप्न में भी वीर्यपात न होवे तत्पश्चात् चौथे दिवस विधिपूर्वक गर्भाधान संस्कार करें यदि चौथे दिवस कोई अड़चल आवे तो अधिक दिन ब्रह्मचर्य व्रत में दृढ़ कर जिस दिन दोनों की इच्छा हो और गर्भाधान की रात्रि भी हो उस रात्रि में यथाविधि गर्भाधान करें तत्पश्चात् दूसरे वा तीसरे दिन प्रातः काल वरपक्ष वाले लोग वधू और वर को रथ में बैठा के बड़े सन्मान से अपने घर में लावें और जो वधू अपने माता पिता के घर को छोड़ते समय आंख में अश्रु भर लावे तो—

जीवं रुदन्ति विमयन्ते अध्वरे दीर्घामनु प्रसितिं दीधियुर्नरः । वामं पितृभ्यो य इदं समेरिरे मयः पतिभ्यो जनयः परिष्वजे ॥

इस मन्त्र को वर बोले और रथ में बैठते समय वर अपने साथ दक्षिण बाजू वधू को बैठावे उस समय में वर—

पूषा त्वेतो नयतु हस्तगृह्याश्विना त्वा प्रवहतां रथेन । गृहान् गच्छ गृहपत्नी यथासो वशिनी त्वं विदथमा वदासि ॥ १ ॥ सुकिंशुकं शल्मलिं विश्वरूपं हिरण्यवर्णं सुवृतं सुचक्रम् । आरोह सूर्ये अमृतस्य लोकं स्योनं पत्ये वहतुं कृणुष्व ॥ २ ॥

इन दो मन्त्रों को बोल के रथ को चलावे यदि वधू को वहां से अपने घर लाने के समय नौका पर बैठना पड़े तो इस निम्नलिखित मन्त्र को पूर्व बोल के नौका पर बैठे—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

अश्मन्वती रीयते संरभध्वमुत्तिष्ठत प्रतरता सखायः ॥

और नाव से उतरते समय—

अत्रा जहाम ये असन्नशेवाः शिवान् वयमुत्तरे माभिवाजान ॥

इस उत्तरार्द्ध मन्त्र को बोल के नाव से उतरें पुनः इसी प्रकार मार्ग चार में मार्गों का संयोग, नदी, व्याघ्र, चोर आदि से भय वा भयंकर स्थान, ऊंचे, नीचे, खाड़ावाली पृथिवी बड़े २ वृक्षों का झुंड वा श्मशान भूमि आवे तो ॥

मा विदन् परिपन्थिनो य आसीदन्ति दम्पती । सुगेभिर्दुर्गमतीतामप द्रान्त्वरातयः ॥

इस मन्त्र को बोले तत्पश्चात् बधू वर जिस रथ में बैठ के जाते हों उस रथ का कोई अंग टूट जाय अथवा किसी प्रकार का अकस्मात् उपद्रव होवे तो मार्ग में अच्छा स्थान देख के निवास करना और साथ रक्खे हुए विवाहाग्नि को प्रगट कर के उस में पृष्ठ २७ में लिखे प्रमाणे ४ चार व्याहृति आज्याहुति देनी पश्चात् पृष्ठ ५१—५२ में लिखे प्रमाणे वामदेव्यगान करना पश्चात् जब वधू वर का रथ वर के घर के आगे आ पहुंचे तब कुलीन पुत्रवती सौभाग्यवती ग कोई ब्राह्मणी वा अपने कुल की स्त्री आगे सामने आ कर वधू का हाथ पकड़ के वर के साथ रथ से नीचे उतारे और वर के साथ सभामण्डप में ले जावे सभामण्डप द्वारे आतेही वर वहां कार्यार्थ आये हुए लोगों की ओर अवलोकन कर के—

सुमङ्गलीरियं वधूरिमां समेत पश्यत । सौभाग्यमस्यै दत्त्वा । याथास्तं विपरेतन ॥ १ ॥

इस मन्त्र को बोले और आये हुए लोग—

ओं सौभाग्यमस्तु, ओं शुभं भवतु ॥

इस प्रकार आशीर्वाद देवें तत्पश्चात् वर

इह प्रियं प्रजया ते समृध्यतामस्मिन् गृहे गार्हपत्याय जागृहि । एना पत्या तन्वं संसृजस्वाधा जिव्रीविदथमावदाथः ॥

इस मन्त्र को बोल के वधू को सभामण्डप में ले जावें तत्पश्चात् बधू वर पूर्व स्थापित यज्ञकुण्ड के समीप जावें उस समय वर—

ओं इह गावः प्रजायध्वमिहाश्वा इह पूरुषाः । इहो सहस्र दक्षिणोपि पूषा निषीदतु

इस मन्त्र को बोल के यज्ञकुण्ड के पश्चिम भाग में पीठासन अथवा तृणासन पर वधू को अपने दक्षिण भाग में पूर्वाभिमुख बैठावे तत्पश्चात् पृष्ठ १७ में लि० ॥

ओं अमृतोपस्तरणमसि ॥

इत्यादि तीन मन्त्रों से एक २ से एक २ करके तीन २ आचमन करें तत्पश्चात् पृष्ठ २५ में लिखे प्रमाणे कुण्ड में यथाविधि समिधाचयन अग्न्याधान करे जब उसी कुण्ड में अग्निप्रज्वलित हो तब उस पर घृत सिद्ध करके पृष्ठ २६ में लिखे प्रमाणे समिदाधान करके प्रदीप्त हुए अग्नि में पृष्ठ २७–२८ में लिखे प्रमाणे आघारावाज्य-भागाहुति ४ चार और व्याहृति आहुति ४ चार अष्टाज्याहुति ८ आठ सब मिल के १६ सोलह आज्याहुति वधू वर करके प्रधान होम का प्रारम्भ निम्नलिखित मन्त्रों से करें ॥

ओं इह धृतिः स्वाहा । इदमिह धृत्यै । इदन्न मम । ओं इह स्वधृतिस्स्वाहा । इदमिह स्वधृत्यै । इदन्न मम । ओं इह रन्तिः स्वाहा इदमिह रन्त्यै । इदन्न मम । ओं इह रमस्व स्वाहा । इदमिह रमाय । इदन्न मम । ओं मयि धृतिः स्वाहा । इदं मयि धृत्यै । इदन्न मम । ओं मयि स्वधृतिः स्वाहा । इदं मयि स्वधृत्यै । इदन्न मम । ओं मयि रमः स्वाहा । इदं मयि रमाय । इदन्न मम । ओं मयि रमस्व स्वाहा । इदं मयि रमाय । इदन्न मम ॥

इन प्रत्येक मन्त्रों से एक २ करके ८ आठ आज्याहुति दे के

ओं आ नः प्रजां जनयतु प्रजापतिराजरसाय समनक्त्वर्यमा । अदुर्मङ्गलीः पतिलोकमाविश शन्नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे* स्वाहा । इदं सूर्यायै सावित्र्यै, इदन्न मम ॥ १ ॥ ओं अघोरचक्षुरपतिघ्न्येधि शिवा पशुभ्यः सुमनाः सुवर्चाः । वीरसूर्देवृकामा स्योना शन्नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे स्वाहा ‡ इदं सूर्यायै सावित्र्यै, इदन्न मम ॥ २ ॥ ओं इमां त्वमिन्द्रमीढ्वः सुपुत्रां सुभगां कृणु । दशास्यां पुत्रानाधेहि पतिमेकादशं कृधि † स्वाहा । इदं सूर्यायै सावित्र्यै, इदन्न मम ॥ ३ ॥

* हे वधू (अर्यमा) न्यायकारी दयालु (प्रजापतिः) परमात्मा कृपा करके (आजरसाय) जरावस्था पर्य्यन्त जीने के लिये (नः) हमारी प्रजाम्) उत्तम प्रजा को शुभगुण कर्म और स्वभाव से (आजनयतु) प्रसिद्ध करे (समनक्तु) उस से उत्तम सुख को प्राप्त करे और वे शुभगुण युक्त (मंगलीः) स्त्री लोग सब कुटु-म्बियों को आनन्द (अदुः देवें उन में से एक तू हे वरानने (पतिलोकम्) पति के घर वा सुख को (आविश) प्रवेश वा प्राप्त हो (नः) हमारे (द्विपदे) पिता आदि मनुष्यों के लिये (शम्) सुखकारिणी और चतुष्पदे गौ आदि को (शम्) सुखकर्त्री (भव) हो ॥

‡ इस मन्त्र का अर्थ पृष्ठ ३९ में लिखे प्रमाणे जानना ॥

† ईश्वर पुरुष और स्त्री को आज्ञा देता है कि हे (मीढ्वः) वीर्य सेचन करनेहारे

ओं सम्राज्ञी श्वशुरे भव सम्राज्ञी श्वश्र्वां भव । ननान्दरि सम्राज्ञी भव सम्राज्ञी अधि देवृषु * स्वाहा ॥ इदं सूर्यायै सावित्र्यै, इदन्न मम ॥ ४ ॥

इन ४ चार मन्त्रों से एक २ से एक २ करके ४ चार आज्याहुति दे के पृष्ठ २७ में लिखे प्रमाणे स्विष्टकृत होमाहुति १ एक व्याहृति आज्याहुति ४ चार और प्राजापत्याहुति १ एक ये मिल के ६ छः आज्याहुति दे कर—

समञ्जन्तु विश्वे देवाः समापो हृदयानि नौ । सं मातरिश्वा सं धाता समुदेष्ट्री दधातु नौ † ॥

इस मन्त्र को बोल के दोनों दधिप्राशन करें तत्पश्चात्

(इन्द्र) परमैश्वर्य युक्त इस वधू के स्वामिन् (स्वम्) तू (इमाम्) इस वधू को (सुपुत्राम्) उत्तम पुत्रयुक्त (सुभगाम्) सुन्दर सौभाग्य भोग वाली (कृणु) कर (अस्याम्) इस वधू में (दश) दश (पुत्रान्) पुत्रों को (आ, धेहि) उत्पन्न कर अधिक नहीं और हे स्त्री तू भी अधिक कामना मत कर किन्तु दशपुत्र और (एकादशम्) ग्यारहवे (पतिम्) पति को प्राप्त होकर सन्तोष (कृधि) कर यदि इस से आगे सन्तानोत्पत्ति का लोभ करोगे तो तुम्हारे दुष्ट अल्पायु निर्बुद्धि सन्तान होंगे और तुम भी अल्पायु रोगग्रस्त हो जावोगे इस लिये अधिक सन्तानोत्पत्ति न करना तथा (पतिमेकादशं, कृधि) इस पाद का अर्थ नियोग में दूसरा होगा अर्थात् जैसे पुरुष को विवाहित स्त्री में दश पुत्र उत्पन्न करने की आज्ञा परमात्मा की है वैसी ही आज्ञा स्त्री को भी है कि दश पुत्र तक चाहे विवाहित पति से अथवा विधवा हुए पश्चात् नियोग से करे करावे वैसे ही एक स्त्री के लिये एक पति से एक वार विवाह और पुरुष के लिये भी एक स्त्री से एक ही वार विवाह करने की आज्ञा है जैसे विधवा हुए पश्चात् स्त्री नियोग से सन्तानोत्पत्ति करके पुत्रवती होवे वैसे पुरुष भी विगत स्त्री होवे तो नियोग से पुत्रवान् होवे ॥

* हे वरानने तू (श्वशुरे) मेरा पिता जो कि तेरा श्वशुर है उस में प्रीति कर के (सम्राज्ञी) सम्यक् प्रकाशमान चक्रवती राजा की राणी के समान पक्षपात छोड़ के प्रवृत्त (भव) हो (श्वश्र्वाम्) मेरी माता जो कि तेरी सासु है उस में प्रेमयुक्त हो के उसी की आज्ञा में (सम्राज्ञी) सम्यक् प्रकाशमान (भव) रहा कर (ननान्दरि) जो मेरी बहिन और तेरी ननद है उस में भी (सम्राज्ञी) प्रीतियुक्त और (देवृषु) मेरे भाइ जो तेरे देवर जेष्ठ अथवा कनिष्ठ हैं उन में भी (सम्राज्ञी) प्रीति से प्रकाशमान (अधि, भव) अधिकार युक्त हो अर्थात् सब से अविरोध पूर्वक प्रीति से वर्त्ता कर ॥

† इस मन्त्र का अर्थ पृष्ठ ३४ में लि० समझ लेना ।

अहं भो अभिवादयामि* ।

इस वाक्य को बोल के दोनों वधू वर, वर की माता पिता आदि वृद्धों को प्रीतिपूर्वक नमस्कार करें पश्चात् सुभूषित हो कर शुभासन पर बैठ के पृष्ठ ५१ में लिखे प्रमाणे वामदेव्यगान करके उसी समय पृष्ठ १८-२१ में लिखे प्रमाणे ईश्वरोपासना करनी उस समय कार्यार्थ आए हुए सब स्त्री पुरुष ध्यानावस्थित होकर परमेश्वर का ध्यान करें तथा वधू वर पिता आचार्य और पुरोहित आदि को कहें कि—

ओं स्वस्ति भवन्तो ब्रुवन्तु ।

आप लोग स्वस्तिवाचन करें तत्पश्चात् पिता आचार्य पुरोहित जो विद्वान् हों अथवा उन के अभाव में यदि वधू वर विद्वान् वेदवित् हों तो वे ही दोनों पृ० २१-२३ में लिखे प्रमाणे स्वस्तिवाचन का पाठ बड़े प्रेम से करें पाठ हुए पश्चात् कार्यार्थ आये हुए स्त्री पुरुष सब—

ओं स्वस्ति ओं स्वस्ति ओं स्वस्ति

इस वाक्य को बोलें तत्पश्चात् कार्यकर्त्ता पिता, चाचा, भाई आदि पुरुषों को तथा माता, चाची, भगिनी आदि स्त्रियों को यथावत् सत्कार करके विदा करें तत्पश्चात् यदि किसी विशेष कारण से श्वशुर गृह में गर्भाधान संस्कार न हो सके तो वधू वर क्षार आहार और विषय तृष्णा रहित व्रतस्थ होके विवाह के चौथे दिवस में गर्भाधान संस्कार करें अथवा उस दिन ऋतुकाल न हो तो किसी दूसरे दिन गर्भ स्थापन करें और जो वर दूसरे देश से विवाह के लिये आया हो तो वह जहां जिस स्थान में विवाह करने के लिये जा कर उतरा हो उसी स्थान में गर्भाधान करे पुनः अपने घर आ के पति सासु श्वशुर ननन्द देवर देवराणी ज्येष्ठ जेठानी आदि कुटुम्ब के मनुष्य वधू की पूजा अर्थात् सत्कार करें सदा प्रीतिपूर्वक परस्पर वर्त्तें और मधुर वाणी वस्त्र आभूषण आदि से सदा प्रसन्न और सन्तुष्ट वधू को राखें तथा वधू सब को प्रसन्न रक्खे, और वर उस वधू के साथ पत्नीव्रतादि सद्धर्म से वर्त्ते तथा पत्नी भी पति के साथ पतिव्रतादि सद्धर्म चाल चलन से सदा पति की आज्ञा में तत्पर और उत्सुक रहे तथा वर भी स्त्री की सेवा और प्रसन्नता में तत्पर रहे ॥

इति विवाहसंस्कारविधिः समाप्तः ॥

---

* इस से उत्तम (नमस्ते) यह वेदोक्त वाक्य अभिवादन के लिये नित्यप्रति स्त्री पुरुष, पिता पुत्र अथवा गुरु शिष्य आदि के लिये है प्रातः सायं अपूर्व समागम में जब २ मिलें तब २ इसी वाक्य से परस्पर वन्दन करें ।

ओ३म्

आर्य्यगण ध्यान दें ॥

महर्षि श्री स्वामी दयानन्दकृत अमूल्य पुस्तक हाथों हाथ घटे दाम पर विके जा रहे हैं। मैं उन महाशयों को धन्यवाद देता हूं कि जिन्होंने इस समय पर लाभ उठाने के कारण हमारे यन्त्रालय के पुस्तकों को खरीदकर हमारे उत्साह को बढ़ाया है। ऋग्वेद भाष्य केवल ३०) में यजुर्वेद भाष्य १३॥) में चारों वेद (मूल) ५) में और उनकी अनुक्रमणिका १॥) में विक रही है और निम्नलिखित पुस्तकों का मूल्य भी कम कर दिया है ॥

नाम पुस्तक	जो मूल्य पहले था	जो मूल्य अब रक्खा गया
ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका	२॥)	१।)
वेदाङ्ग प्रकाश	५।॥≡)॥	४।≡)॥।
संस्कृतवाक्यप्रबोध	≡)	=)
व्यवहारभानु	≡)	=)
हवनमन्त्र	)॥	)।
शास्त्रार्थ मेला चांदापुर उर्दू	-)॥	-)
शास्त्रार्थ काशी	-)	)॥।
शास्त्रार्थ फीरोज़ाबाद	≡)	-)॥
शतपथ प्रथम काण्ड	॥)	।)
वेदान्तिध्वान्तनिवारण अंग्रेजी	-)॥	-)
वेदान्तिध्वान्तनिवारण नागरी	-)	)॥।
आर्य्याभिविनय	।)	≡)
भ्रान्तिनिवारण	-)।	-)
सत्यार्थप्रकाश साधा० कागज नागरी	२)	१॥)
सत्यार्थप्रकाश बढ़िया ,, ,,	२॥)	२)

☞ डाक महसूल सब का इन से अलग है।

प्रबन्धकर्त्ता
वैदिक यन्त्रालय
अजमेर

पुस्तक लौटाने की तिथि अन्त में अङ्कित है । इस तिथि को पुस्तक न लौटाने पर दस नये पैसे प्रति पुस्तक अतिरिक्त दिनों का अर्थदण्ड आप को लगाया जायेगा ।

५०००.११.१४।

Date	No.	Date	No.

Date	No.	Date	No.